CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिंदुस्तानी ! ब्रिटेन छोड़ो
अंग्रेजीदाँ के अंधविश्वास
बालकृष्ण सम ● दत्ता सामंत
कर्नाटक में गुंडूराज ● जिब्राल्टर

साप्ताहिक
दिनमान
टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन

रु·1.50
9-15 अगस्त, 1981
18-24 सावन, 1903

पटना बंद

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अगले दिनमान की अपनी प्रति अभी से रखवा देने के लिए एक विज्ञापन

9 अगस्त 1942 को आप कहाँ थे? गृहस्थी में कि विश्वविद्यालय में कि स्कूल में कि कम से कम इस लोक में नहीं? कहीं भी रहे हों, पायेंगे कि तब से अब तक वक्त बहुत बदल गया है: अंग्रेज़ों, भारत छोड़ो - तब हमने कहा था. आज उपनिवेशवाद अंतर्राष्ट्रीय व्यापार की शक्ल में लौट आया है. विदेशी भाषा गरीबों पर लादी जा रही है. धर्म और जाति के सहारे फूट बढ़ायी जा रही है. सारे भारत की पीड़ा को इलाकों की पीड़ा बनाया जा रहा है

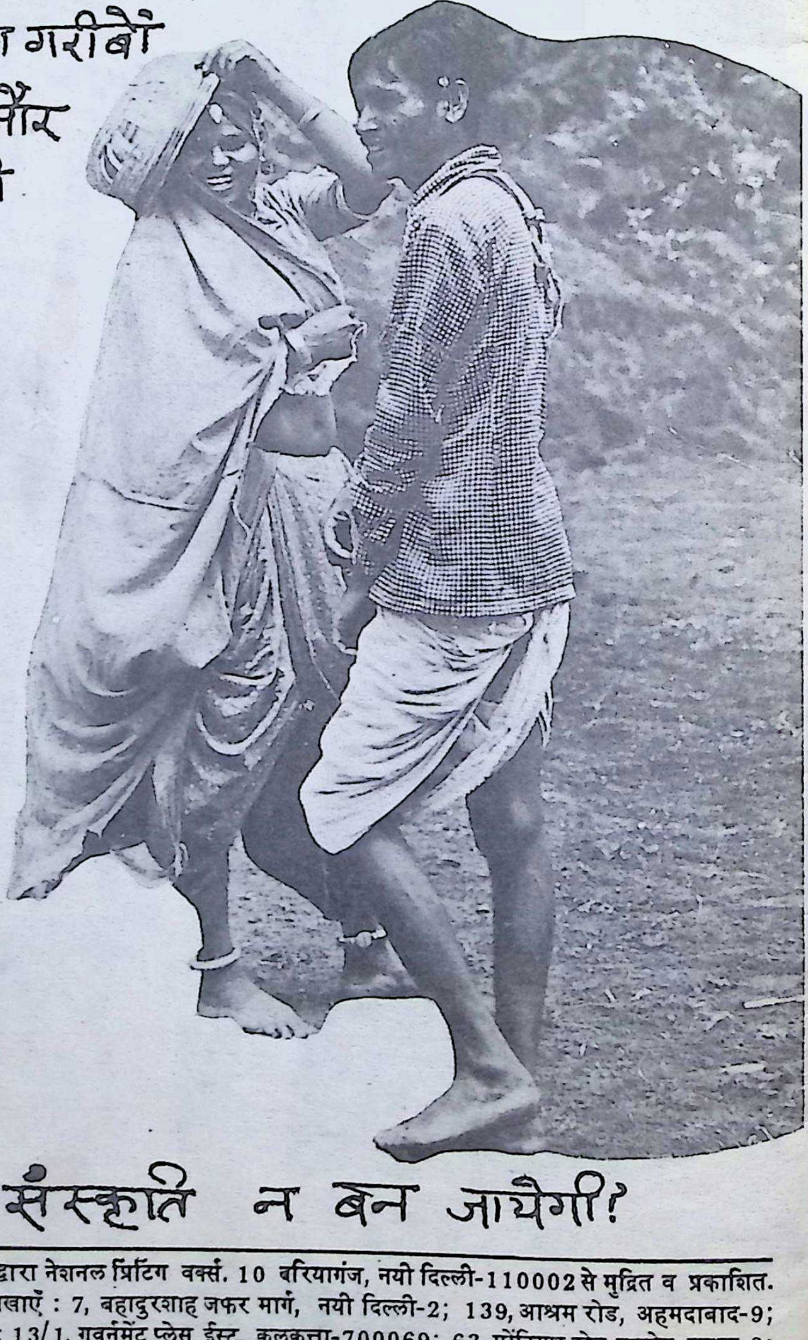

स्वाधीनता दिवस
विशेषांक
16-22 अगस्त 81

नागरिक का अपने निर्वाचित प्रतिनिधि से जवाब तलब करने का अधिकार आज किताबों में लिखी चीज़ बन कर रह गया है

इस तरह की सामाजिक राजनैतिक परिस्थिति में संस्कृति अपाहिजों की संस्कृति न बन जायेगी?

बैनेट, कोलमैन एंड कं. लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए रमेशचन्द्र द्वारा नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स. 10 बरियागंज, नयी दिल्ली-110002 से मुद्रित व प्रकाशित. पंजी. कार्यालय: डॉ. दादाभाई नौरोजी रोड, बंबई-400001. शाखाएँ : 7, बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-2; 139, आश्रम रोड, अहमदाबाद-9; 105/7 ए, एस. एन. बनर्जी रोड, कलकत्ता-700014. कार्यालय : 13/1, गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-700069; 63, मोंटियथ रोड, इग्मोर, मद्रास-8; 407-1, तीरथ भवन, क्वार्टर गेट, पुणे-411002; 26, स्टेशन एप्रोच, सडवरी, वेंबले, मिडिलसेक्स, लंदन, यू. के., लंदन टेलीफोन : 01-903-9696.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धूम मचा दे... रंग जमा दे.

पान पराग®
पान मसाला
दुनियाँ में सबसे ज्यादा बिकनेवाला

कोठारी केमिकल्स, २६/५० बिरहाना रोड, कानपुर.

everest/d80/KC/108 hn

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

ऐंठो लाशों पर गजबजाते गिद्ध

विनोद अंबष्ठ

हमने क्या किया जब ट्रेन उलटी थी
कुछ हुआ था क्या मेरे भी दिल को?
सुनी क्या हमने भी चीख और पुकार
चीख किसी अपने ही साथी की
हाँ, कौन जाने हजारों की भीड़ में कोई हो मेरा अपना
बस. . .सब कुछ यहीं तो टिका है
है कोई मेरा अपना? चिट्ठी डालो सब ठीक ठाक तो है?
लड़ाई तो यहाँ सिर्फ सिनेमा के टिकटों के लिए ही लड़ी जाती है
कल ही की बात है गोलियाँ चली थीं
छत से कूद आकाश को चले गये थे कुछ निर्दोष
तब तो बड़ा हड़कंप मचा था
चार मौतों के लिए
वाटरलू लड़ने की हुई थी घोषणा
छात्र नेताओं ने दिये थे छोटे बड़े बयान
अब हजारों की समाधि पर क्यों नहीं रोता कोई बावला
नहीं चढ़ाये गये फूल न एक निकला जुलूस
छात्रों के अनगिनत संगठन, सैकड़ों समाज सेवी संस्थाएँ
क्या एक कोई आया था लाशों को देने कंधा
इसी बड़े शहर में आयी थी बाढ़
बाढ़ और राहत, दोनों में डूब गये थे लोग
डूबी झोंपड़ियों के ऊपर तैरती नावों में
सब दौड़ थे अट्टालिकाओं को रोटी पहुँचाने
खिंची थी, तस्वीर, छपे थे इंटरव्यू
किस्से कहानी, चर्चा परिचर्चा
कोई झमेला नहीं, मजा ही मजा था
अब क्यों नहीं नोच खाते हम अपना ही जीवित माँस
जब छपती हैं तस्वीरें टेढ़ी-मेढ़ी ऐंठी लाशों पर गजबजाते गिद्धों की
और करोड़ों आँखें सिर्फ देख भर लेती हैं
क्या यह एक तस्वीर काफी नहीं है
एक और तूफान ला देने को
तूफान जो सोख ले बागमती का पानी
और पटक आये डिब्बों को लाशों समेत
हवा बवंडर सुरक्षित, वातानूकूलित
संसद भवनों पर?

अंतिम वर्ष, नूतन छात्रावास, पटना मेडिकल कालेज

अंग्रेज़ी के अंधभक्त और गंवार अंग्रेज़ी संगीत

10, 11, 12 जुलाई, '81 के टाइम्स ऑफ इंडिया (दैनिक) में प्रकाशित श्री अखिलेश्वर झा का निबंध 'इंपोर्टेंस आफ इंग्लिश' अपने देश के उन तथाकथित बुद्धिजीवी लेखकों, पत्रकारों की रुग्ण मानसिकता पर दस्तावेज है, जो भारत की मिट्टी में अंग्रेजी का गंधहीन स्वादहीन पौधा लहलहाते हुए देखना चाहते हैं, और जिन्हें हिंदी में एक 'कारुणिक दैन्य' दृष्टिगोचर होता है. अपने लंबे चौड़े लेख में जो अंग्रेजी भाषा की स्वाभाविक लफ्फाजी, बहसीपन, अर्थहीनता, पूर्वाग्रह, दुराग्रह, भौंडी आक्रामकता और लचर दलीलों से ओतप्रोत है, श्री झा ने हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाये जाने के निर्णय को भारतीय राजपुरुषों का सस्ता एवं उग्रराष्ट्रवाद तथा राजनैतिक दूरदर्शिता का अभाव कहा है. अंग्रेजी ने पिछले तीस वर्षों में न केवल (हिंदी) के तुच्छ उग्रराष्ट्रवादी विरोध को झेला है, अपितु वह हिंदी से भी अधिक राष्ट्रभाषा बन गयी है. विवेक, राष्ट्रीय गौरव, भाषायी आत्मसम्मान को ताक पर रख कर जनाब झा साहिब फरमाते हैं कि हिंदी ने अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान, विज्ञान एवं भारतीय जीवन दर्शन में एक भी ऐसा विद्वान पैदा नहीं किया है, जिसे मौलिक विचारक कहा जा सके. डा. लोहिया, राहुल सांकृत्यायन, डा. संपूर्णानंद, डा. गोविंदचंद्र पांडेय जैसे विद्वानों को इतिहास की किस कालकोठरी में वह बंद करना चाहते हैं? शायद उन्होंने पश्चिम में तहलका मचाने वाली वोल्गा से गंगा तक और दर्शन दिग्दर्शन जैसी हिंदी की अमरकृतियों का नाम ही नहीं सुना. ये महानुभाव समाजशास्त्र के प्रसिद्ध ग्रंथ 'मनु की समाज व्यवस्था' (प्रो. सत्यमित्र दुबे) और डा. रामविलास शर्मा के कालजयी ग्रंथों की चर्चा तक नहीं करते.

हिंदी पत्रकारिता पर कीचड़ उछालने वाले झा साहिब को मैं यह बताना चाहता हूँ कि गोरखपुर विश्वविद्यालय में अंग्रेजी की अतिथि प्रोफेसर डा. लिविस ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि हिंदी पत्रिकाओं का बौद्धिक स्तर अंग्रेजी टाइम्स से कतई कम नहीं है. (वह हिंदी और संस्कृत भी जानती थीं). अपने न्यस्त स्वार्थ के कारण अंग्रेजी के अंधभक्त अंग्रेजी भाषा और गंवार अंग्रेजी संगीत (वेरियर एल्विन ने 'ए फिलास्फी फार नेफा' में इसी शब्द का प्रयोग किया है) की विरुदावली गाया करें. देश की मनीषा उन का प्रलाप नहीं सुनेगी.—उदयभानु पांडेय, असम शिक्षा सेवा, प्रोफेसर कालोनी, डिफू राजकीय म. वि., डिफू, असम

श्री अखिलेश्वर झा के लेख को पढ़ कर अंग्रेजी के महत्त्व का उतना बोध नहीं हुआ, जितना होना चाहिए. न जाने क्यों लेखक के मन में हिंदी विरोध की भावना पैठी हुई है. वस्तुतः श्री अखिलेश्वर झा ने अपने लेख में जो तर्क दिये हैं, एक एक कर उन के विरोध में तर्क दिये जा सकते हैं. यहाँ मैं केवल दो एक तर्कों के संबंध में लिख रहा हूँ. उन का एक तर्क है—बच्चन, अज्ञेय और नगेंद्र अंग्रेजी के (साहित्य के ही) विद्यार्थी रहे हैं. क्या यह कोई तर्क है? हम तो कहते हैं कि ये तीन ही क्यों हिंदी में और भी कई लेखक मिल जायेंगे, जो अंग्रेजी खूब जानते हैं.

डा. रामविलास शर्मा का उदाहरण ही लीजिए. किसी भाषा का अध्ययन करना और बात है और किसी भाषा में लिखना और बात है. सच तो यह है कि अंग्रेजी के विद्यार्थियों को (श्री अखिलेश्वर झा के अनुसार) अंग्रेजी में ही लिखना चाहिए था और यदि ये सभी लेखक अंग्रेजी में लिखते तो क्या उन को वह ख्याति प्राप्त होती, जो आज उन्हें प्राप्त है. आज भी अंग्रेजी में एम्. ए. करने वाले छात्रों को अंग्रेजी के (प्रधानरूप से इंग्लैंड के) कवियों और लेखकों का अध्ययन करना पड़ता है. भारतवर्ष में कोई मौलिक लेखक भारतीय भाषा का ही हो सकता है. विदेशी भाषा का नहीं हो सकता. ज्ञानार्जन के लिए अंग्रेजी क्यों, अन्य भाषाएँ भी सीखी जा सकती हैं. ज्ञानार्जन में अंग्रेजी भाषा सहायक है, इसे हम स्वीकार करते हैं. किंतु अभिव्यक्ति में वह हमारा कितना साथ देती है. इस का उत्तर दिया जाना चाहिए. मैं चाहता हूँ कि इस संबंध में श्री बच्चन, श्री सच्चिदानंद वात्स्यायन और डा. नगेंद्र अपनी अपनी ओर से ठीक ठीक उत्तर दें और श्री अखिलेश्वर झा द्वारा फैलाये जाने वाले भ्रम का निराकरण करें.—राजमल बोरा, 6, आनंद नगर, टाउन हाल, औरंगाबाद (महाराष्ट्र)

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मत और सम्मत

कहानी फूलन की

पैसे के लोभ में आ कर जनता के चरित्र को पतनोन्मुख करना हमारे फिल्म संस्थान का मानो एक महान पेशा बन गया है. इस के ज्वलंत उदाहरण के रूप में रवींद्र आर्टस् के बैनर तले बनने वाली फिल्म 'कहानी फूलन की' को प्रस्तुत किया जा सकता है. आदमी अगर नेक राह पर चलते हुए समाज सेवा जैसे किसी महान कार्य को करता है, तो उसे कोई नहीं जानपाता. ऐसे सैकड़ों लोग मेरी नजर में हैं, जो जी जान से इस देश की भलाई सोचते हैं तथा जहाँ तक संभव होता है, देशसेवा के कार्य में संलग्न रहते हैं. लेकिन उन्हें स्थानीय लोगों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता. किंतु कुख्यात लोग, भले ही वे देश के महान दुश्मन हों, देश का सर्वनाश सोचने वाले हों, वे रात भर में ही लोगों की जुबान पर चढ़ जाते हैं. विभिन्न ढंग से उन का प्रचार किया जाता है, उन पर कहानियाँ लिखी जाती हैं तथा उन पर फिल्में बनायी जाती हैं. क्या इस परिस्थिति में लोगों के मन में बुरी भावनाएँ नहीं जागेंगी? जब अच्छा कार्य करने से सुप्रसिद्धि नहीं मिलती तो गलत कार्य कर के ही क्यों न वे ख्याति प्राप्त करना चाहेंगे? क्या मैं वर्तमान सरकार से यह अपेक्षा करूँ कि आम जनता के मन को विकृत करने वाली इस फिल्म पर वह रोक लगाये?

रीता भादुड़ी : 'डाकू फूलन'

—सुनील कुमार, क्वार्टर नं. टी/ 81/3, ट्राफिक कालोनी, टाटानगर

जड़ें सड़ चुकी हैं

19 जुलाई: चरचे और चरखे पढ़ा. जांच कमेटियाँ बिठाने के पीछे हमारी वही सड़ी-गली राजनैतिक मंशा काम कर रही है, जो कई वर्षों से अपने दामन के काले अस्तित्व को नकारती है दूधिया साबित किये जाने की चाह में.

हमारी संपूर्ण सामाजिक राजनैतिक संरचना भी इतनी सड़ांध उत्पन्न कर रही है कि हमने उस में बदलाव की नहीं; बल्कि पूरी सामाजिक-राजनैतिक संरचना की समाप्ति की ही कामना करनी शुरू कर दी है, ताकि नयी संरचना की नींव एक साफ-सुथरी जमीन पर पड़ सके, प्रजातंत्र कोई राजतंत्र तो नहीं है कि किसी वर्ग को गलतियों के लिए दोषी ठहरा कर हम चैन की बाँसुरी बजाते रहें.

सारी गलतियों में अपनी साझेदारी स्वीकारते हुए ही इस के उन्मूलन का उपाय ढूँढ़ा जा सकता है, गलतियों के लिए केवल दूसरों को ही दोषी ठहरा कर हमने इस सारी संरचना को काफी सड़ाया है. आज यह संरचना इतनी विषाक्त हो चुकी है कि इसी व्यवस्था में जीने के आदी भी अब ऊब महसूस कर प्रतीक्षा कर रहे हैं नयी सामाजिक-राजनैतिक संरचना से अपनी प्रतिद्वंद्विता जाहिर करने के लिए.

जाँच कमेटियों से जनसाधारण की श्रद्धा अभी भी पूरी तौर पर समाप्त नहीं हुई है. जाँच कमेटियों की सहायता जाँच के दौरान कर, उस की रिपोर्टों को जनसाधारण के समक्ष पेश कर तथा उस में सुझाए सुझावों पर अमल कर सरकार लोकतंत्र को मजबूत बना जन-साधारण का दिल जीत सकती है.—सुधारानी, द्वारा-श्री मटुकधारी प्रसाद, तिलौथू-(रोहतास)

नेपाल से एक खत

खुशी है कि आप अपनी पत्रिका में आजकल नेपाल की राजनीति को काफी जगह दे रहे हैं. सिर्फ मुझे ही नहीं बल्कि हम समस्त नेपाली पाठक लोगों को विश्वास है कि दिनमान के समाचार गहन, ग्राह्य और विश्वसनीय होते हैं. विश्लेषणात्मक लेख और समाचार के माध्यम से नेपाल की राजनीति संबंधी जो वास्तविकता प्रकाश में लाये, उस के लिए दिनमान को बधाई. आशा है दिनमान भविष्य में भी इसी प्रकार वास्तविकता प्रकाश में लायेगा. —कुमारी मंजुला श्रेष्ठ, भीमसेन पथ, धनकुट, नेपाल

वनों से चिपको

19 जुलाई: दिनमान में गौतम सुले द्वारा प्रेषित उत्तरप्रदेश वनविभाग के विज्ञापन की कतरन देख कर दुखद अहसास हुआ कि प्रशासन विकासशील (कथित) पेड़ों से चिपकने की सलाह दे कर अपनी नियति स्पष्ट करता है कि हम तो (सरकार) वनों की दुर्दशा के लिए कृतसंकल्प हैं ही, आप जिस पेड़ को बचाना चाहते हैं, उस से चिपकियेगा अन्यथा इस अंधी सरकार का कुल्हाड़ा तो बगैर नियंत्रण पूर्ववत चलता ही रहेगा?—उदयलाल कोठारी, शाखा प्रबंधक स्टेट बैंक ऑफ बीकानेर एवं जयपुर, परसोला, जिला उदयपुर (राज.)

पिछले सप्ताह

23–29 जुलाई 1981

देश

23 जुलाई : मुख्य चुनाव आयुक्त श्यामलाल शकधर द्वारा कांग्रेस (इं) को असली कांग्रेस बताना. जयपुर से सभी तरह के सड़क, हवाई और रेल संपर्क भंग. पटना के पास एक रेलगाड़ी के पटरी से उतर जाने से तीन व्यक्तियों की मृत्यु. सीमेंट के 50 किलो बोरी में 4.10 रु. की वृद्धि.

24 जुलाई : राजस्थान में भीषण बाढ़ से 550 व्यक्तियों की मृत्यु और कई गाँवों का बह जाना.

25 जुलाई : उत्तरप्रदेश की बाढ़ में 50 लाख लोग चपेट में. गृहमंत्री ज्ञानी जैलसिंह द्वारा पश्चिम बंगाल के राज्यपाल त्रिभुवननारायण सिंह को हटाने के समाचार को बेबुनियाद बताना.

26 जुलाई : राष्ट्रपति द्वारा खाने के तेलों पर कर बढ़ाने संबंधी एक अध्यादेश जारी. कांग्रेस (इं) के वकील सदस्यों द्वारा प्रधानमंत्री से 'हाथ' चिन्ह बनाये रखने का आग्रह. आंध्रप्रदेश के मंत्रिमंडल में एक और मंत्री शामिल.

27 जुलाई : युवराज चार्ल्स की शादी में भाग लेने के लिए राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी लंदन के लिए रवाना. सरकार द्वारा आवश्यक सेवाओं में हड़तालों पर प्रतिबंध लगाने संबंधी एक अध्यादेश जारी. 17 अगस्त से संसद का अगला अधिवेशन शुरू.

28 जुलाई : मजदूर नेता और विधायक दत्ता सामंत बंबई में रिहा और पुनः गिरफ्तार. केंद्रीय काबीना द्वारा न्यायाधीश श्री ए. सी. गुप्त की मारुति जाँच आयोग द्वारा प्रस्तुत रपट अस्वीकार. दिल्ली में तिपहिया स्कूटर-चालकों और टैक्सी चालकों की हड़ताल समाप्त.

29 जुलाई : तारापुर के लिए परिष्कृत यूरेनियम देने के बारे में भारतीय और अमेरिकी नेताओं में नयी दिल्ली में वार्त्ता. इंडियन एयरलाइंस के विमानों के भाड़े में पहली अगस्त से पाँच प्रतिशत की वृद्धि की घोषणा.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पिछले सप्ताह

23–29 जुलाई 1981

विदेश

23 जुलाईः इस्राइल की नीतियों की आलोचना करने के लिए प्रधानमंत्री मेनाहिम बेगिन की अमेरिका को धमकी. बंगलादेश के वायुसेनाध्यक्ष एयर वाइस मार्शल सदरुद्दीन का बदला जाना. मध्य अफ्रीका गणराज्य में आपत्कालीन स्थिति की घोषणा.

24 जुलाईः लेबनान में इस्राइली और फिलिस्तीनी मुक्ति मोर्चे में युद्ध-विराम. चीन द्वारा अफगान-सोवियत संघ की सीमा संधि को अवैध बताना.

25 जुलाईः फिलिस्तीनी मुक्ति मोर्चे द्वारा युद्धविराम का उल्लंघन. ईरान में राष्ट्रपति पद के चुनाव के लिए भारी मतदान. सोवियत संघ द्वारा अमेरिका से हिंदमहासागर में अपनी सैन्य शक्ति घटाने का आग्रह. अफगानिस्तान पर यूरोपीय आर्थिक समुदाय का प्रस्ताव सोवियत संघ को अस्वीकार.

26 जुलाईः ईरान के प्रधानमंत्री मुहम्मद अली रजाई की राष्ट्रपति के चुनाव में भारी विजय . उगांडा के राष्ट्रपति डॉ. मिल्टन ओबोटे द्वारा ईदी अमीन के करीब एक हजार समर्थक बंदी रिहा.

27 जुलाईः खाद्य वस्तुओं की कमी के कारण पोलैंड में हड़ताल की आशंका. रजाई को अपदस्थ राष्ट्रपति बानी-सदर से अधिक मत मिलने का सत्तारूढ़ रिपब्लिकन इस्लामी पार्टी का दावा.

28 जुलाईः बंगलादेश के राष्ट्रपति का चुनाव 21 सितंबर के स्थान पर 15 अक्तूबर को कराने का निर्णय.

29 जुलाईः लंदन में युवराज चार्ल्स और लेडी डियाना स्पेंसर का विवाह धूमधाम और राजकीय ठाठबाट से संपन्न. ईरान के भूकंप में पांच हजार से अधिक लोगों के मरने की आशंका. ईरान के अपदस्थ राष्ट्रपति अबुल-हसन बानीसदर को फ्रांस द्वारा राजनैतिक शरण प्रदान. हालीवुड के फिल्म निदेशक विलियम वायलर का लॉस एंजेलिस में देहांत.

जी, आपने कुछ कहा ?

सत्यप्रिय मित्र

समाज को बिखरती संस्थाओं पर अध्ययन और लेखन के लिए विख्यात आशारानी व्होरा ने दिनमान के 19 जुलाई अंक में 'समाज में बूढ़ों की दुनिया' के अंतर्गत उ.प्र. की पेंशन रपट और टिप्पणी पढ़ कर लिखा है कि :

इस ओर नेताओं और पाठकों का ध्यान दिलाने के बाद यदि इस विषय को एक आंदोलन के रूप में भी 'दिनमान उठाये तो यह एक समयोचित कदम होगा.' संयुक्त परिवार के बहुत कुछ टूटने के बाद भी बूढ़ों के समादर में कोई बड़ा गुणात्मक फर्क अभी यहाँ नहीं आया है—इस उक्ति से मैं सहमत नहीं हूँ. समस्या जितनी ऊपर से दिखायी देती है, उस से अधिक गंभीर है और दिनोदिन गंभीरतर होती जा रही है. इस के पूरी तरह उभर कर सामने न आने के पीछे पुरानी व नयी पीढ़ी के सोच का एक बुनियादी अंतर है—युवा लोग जहाँ तलख आक्रोश के साथ अपनी समस्याएँ सामने लाते हैं, पुरानी पीढ़ी के वृद्ध वृद्धाएँ अभी भी 'घर की इज्जत' के नाम पर उन्हें चुप रहते और दबाते हैं. मैं पिछले कई वर्षों से अपने सीमित स्तर पर यह अध्ययन सर्वेक्षण करती रहती हूँ. घरों से गुम होने वाले तीर्थों पर जा कर पवित्र नदियों में छलांग लगा डूब मरने वाले, बीमारी में उपेक्षा के शिकार हो आत्म-हत्या करने वाले, घरों में कष्ट व अपमानभरी तथा घरों से बाहर निकल असहायावस्था में या तनावपूर्ण दयनीय जिंदगी जीने वाले वृद्धों की संख्या में दिनोदिन तेजी से वृद्धि हो रही है.

जिन बेटों के पास जगह, पैसे, साधनों की कमी नहीं, उन में से भी अधिकांश उन्हें (खर्च कर भी) अलग ही रखना चाहते हैं. एक मेडिको समाजसेवक ने बताया, 'अस्पताल में भरती करा जाते हैं, लेने नहीं आते या जब तक बने टालते रहते हैं, अधिक से अधिक समय वहाँ रखने के लिए मिन्नतें करते हैं, जब कि जगह की कमी से ठीक होने के बाद हम उन्हें वहाँ रख नहीं सकते. कइयों को तो लंबी प्रतीक्षा के बाद भी 'आफ्टर केयर होम' में भेजना पड़ता है कि घर वाले न ले जाते हैं, न ठीक पता ही दे कर जाते हैं.' वृद्धाश्रमों के आवासी खातेपीते घरों के वृद्धों और बेसहारा वृद्धों की मार्मिक कहानियों में कोई बहुत अधिक अंतर नहीं मिला मुझे. फिर हमारे यहाँ वृद्धाश्रम कितने हैं अभी? जो हैं, उन में कितनी सुविधाएँ हैं? मनोरंजन साधनों व समर्पित कार्यकर्त्ताओं की बात तो जाने दें, उपेक्षा व अकेलापन सहते हुए भी अपेक्षित जीवनोपयोगी सुविधाएँ.' तक उन्हें नहीं मिलतीं. भारतीय वृद्धों के पास पश्चिमी वृद्धों की तरह न निजी आयसाधन हैं, न वैसी तटस्थ मानसिकता. फिर जब साधन-संपन्नता और मनोरंजक वातावरण वाली सुविधाजनक आश्रम व्यवस्था के बावजूद पश्चिमी देश वृद्धों के अकेलेपन की भावात्मक समस्या हल नहीं कर पाये, तो हमारे यहाँ विपन्नता के साथ जुड़ी अधिक गहरी इस समस्या का समाधान क्या वैसी संस्थात्मक

कितना अकेला बच्चा

26 जुलाईः चरचे और चरखे स्तंभ के अंतर्गत 'कितना अकेला बच्चा' लेख पढ़ा. पूरे लेख में सिर्फ एक ही बात गले नहीं उतरती कि एक छोटे से बालक की आत्महत्या को पब्लिक स्कूल में हिंदी बोलने के कारण पड़ी डांट के साथ जोड़ा गया. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से अल्पवय किशोर के लिए इतनी सी घटना इतना बड़ा आघात नहीं दे सकती कि वह आत्महत्या करने को तत्पर हो जाये. बालक की आत्महत्या अथवा संभव हत्या के पीछे कोई अन्य बड़ा कारण है और संयोग से इसी दौरान उपरोक्त स्कूल वाली घटना हुई. एक संवेदनशील और प्रभावशाली व्यक्ति के लिए इन दोनों बातों के बीच संबंध बिठाना कोई मुश्किल कार्य नहीं है. यह सनसनीखेज उदाहरण अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है और पाठक का ध्यानाकर्षण लेख के मुख्य भाव से हटा कर इस घटना की ओर करता है.—**मैत्रेय प्रभाकर, फ्लैट नं.-41, बिल्डिंग-5 वर्मा नगर, अंधेरी, बंबई**

दरार पैदा करने की कोशिश

12 जुलाई : 'उपेंद्र शर्मा कौन था' लेख में तार छीलने वाले हंसिया का परिचय यह दिया गया कि 'तार छीलने वाला एक हंसिया जिस का प्रयोग बहुतायत से बिहार शरीफ के दंगों में मुसलमानों की गर्दन रेतने के लिए किया गया था.' यह पढ़ कर हमारे जैसे दिनमान के बहुत सारे पाठकों के दिल में गहरी चोट पहुँची है.

लेखक ने ऐसा लिख कर शायद यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि बिहार शरीफ के दंगे में जुल्म सिर्फ मुसलमानों पर हुआ है लेकिन सही तथ्य यह है कि दंगा कभी एक तरफा नहीं होता और जब दो पक्ष लड़ते हैं तो हानि भी दोनों को उठानी पड़ती है. भले ही किसी को कम हानि होती है और किसी को ज्यादा. किंतु लेखक ने अपने जहरीले उदाहरण से हिंदू और मुसलमान के बीच एक दरार पैदा करने की कोशिश की है.—**सुबोध सिंह पवार, असलम नबाव, संडे बाजार, बेरमो, गिरीडीह, बिहार**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

व्यवस्था या नगण्य सी सरकारी पेंशन व्यवस्था द्वारा संभव है? भारतीय वृद्धों के परिवारों में पुनर्स्थापन का रचनात्मक आंदोलन चलाये बिना और सभी वृद्धों के लिए सरकारी सुरक्षा योजना शुरू किये बिना न तो इस समस्या का समाधान मिलेगा, न बुढ़ापे की सुरक्षा के अभाव में हमारे यहाँ परिवार नियोजन कार्यक्रम ही सफल होगा.

हरिराम मिश्र 'चंचल' के अस्पताल से लोप सरकार हो जाने की घटना का समाचार दे कर पर उस की जवाबदेही का प्रश्न हम दिनमान में प्रकाशित कर चुके हैं. तब हम ने लिखा था कि उन को खोजने की बात भुला कर उन की रुकी हुई राजनैतिक पेंशन जारी कराने की बात उठाना उन के परिवार से एक समझौते के रूप में लाया जा रहा है. अब श्रीमती आशारानी व्होरा के पत्र से ऐसा विचार मन में उठता है कि कहीं चंचल जी भी उन्हीं गुम होने वालों में से तो नहीं थे, जिन का ज़िक्र लेखिका ने किया है.

गोरखपुर के आधुनिक विचार मंच के संयोजक **चितरंजन मिश्र** ने बिहार में उर्दू को द्वितीय राजभाषा का दर्जा मिलने और उ.प्र. में भी ऐसी ही व्यवस्था का मुख्यमंत्री द्वारा आश्वासन दिये जाने पर लिखा है: यदि दक्षिण भारत के मुसलमान बिना उर्दू के द्वितीय राजभाषा हुए अपना काम चला सकते हैं—तो उत्तरप्रदेश और बिहार की सरकारें, राष्ट्रीय चिंतन और संस्कृति की संवाहिका हिंदी को मुसलमानों से, और मुसलमानों की भाषा के नाम पर हिंदुओं से अलग करने की साजिश क्यों कर रही हैं?

मुसलमानों की भाषा उर्दू है, यह भ्रम आज से नहीं, पाकिस्तान की मांग के समय से फैलाया जा रहा है. हिंदी भाषी राज्यों को छोड़ और कहीं भी कोई मुसलमान उर्दू को अपनी भाषा नहीं मानते. जो प्रांत की भाषा है, वही उन की भाषा होती है. उन्हीं भाषाओं में वे अपने गीत और गुस्सा दोनों रागविराग प्रकट करते हैं. पर हिंदी भाषी क्षेत्र के हिंदी के सांस्कृतिक पक्षधर भारतीय भाषाओं में हिंदू मुसलमान एकता के विद्यमान रूप को जानते हुए भी उस का सांस्कृतिक महत्त्व यथे ट रूप से नहीं मानते. यदि वे इसे मानें और इसे प्रचारित करें तो बहुतांश साधारण जनों में भी यह जानकारी फैलेगी और मुसलमान भारत भर में उर्दू ही बोलते लिखते हैं, यह भ्रांति टूटेगी हिंदी प्रदेश में उल्टे हाल यह है कि उर्दू सिर्फ मुसलमानों की भाषा नहीं है. पर यह बात ऐसी भी नहीं कि उसे बचाने के लिए उर्दू के गैर मुसलमान लेखकों का सम्मेलन करने जैसी संकीर्णता दिखायी जाये, जो कुछ समय पहले लखनऊ में दिखी थी.

मित्रता की कीमत

लेबनान में फिलिस्तीनी ठिकानों पर इस्राइली बमबारी युद्धविराम के कारण यद्यपि रुकी हुई है, पर अभी भी दोनों ओर से युद्धविराम के उल्लंघन के समाचार मिल रहे हैं. खबरों के अनुसार इस बमबारी में इस्राइल ने अमेरिकी विमानों और अमेरिकी युद्ध सामग्री का इस्तेमाल किया है. इस बात को ले कर अमेरिकी समाचार पत्रों में ही तीव्र प्रतिक्रिया हुई है. पर अभी भी अमेरिका की ओर से ऐसा कोई संकेत नहीं है कि इस्राइल को एफ 16 जेट विमान देने के अपने निर्णय को वह बदल देगा. प्रसिद्ध अमेरिकी पत्र वाशिंगटन पोस्ट ने लिखा है:

'इस्राइली प्रधानमंत्री श्री बेगिन कहते हैं यह बिल्कुल बेतुका है कि जब भी इस्राइल अमेरिकी हथियारों का इस तरीके से इस्तेमाल करे कि अमेरिकी नजरों में आक्रामक हो तभी वह अमेरिका से सलाह मशविरा करे. उन का यह कहना ठीक ही है कि कोई भी प्रभुसत्ता संपन्न देश इस तरह अपनी नीति का पालन नहीं कर सकता. पर साथ ही श्री बेगिन का यह सोचना भी बेतुका है कि अमेरिका इस्राइल को आधुनिकतम हथियार देता चला जायेगा. और वह मनमाने ढंग से उन का इस्तेमाल करेगा भले ही इस से अमेरिका का हित साधन हो. हथियारों के बारे में चाहे औपचारिक समझौता हो या अनौपचारिक-इस्राइल का यह कोई तर्क नहीं है. फिर यह सोचना पड़ेगा कि आखिर अमेरिका इस्राइल के संबंधों का आधार क्या है?

इस्राइल की मूल सुरक्षा की नैतिक जिम्मेदारी निश्चय ही अमेरिका की है. इस्राइल अमेरिका से यह चाहता है कि वह उस की बल प्रयोग की नीति का भी समर्थन करे. इस की भारी कीमत अमेरिका को चुकानी पड़ेगी. और इस क्षेत्र के अन्य देशों के साथ संबंध बनाने और रखने में अमेरिका को परेशानी होगी.

श्री बेगिन अमेरिका की इस बात को भी नहीं मानते कि इराक ईरान का युद्ध समाप्त करने की राजनयिक संभावनाएँ अभी समाप्त नहीं हुई हैं. चुनावों में अपनी जीत का श्रेय लूटने और इराक की तरफ से दुनिया का ध्यान हटाने के लिए उन्होंने सीरिया के प्रक्षेपास्त्र संकट को बढ़ा दिया. अब चुनाव जीत कर भी श्री बेगिन इस पूरे क्षेत्र पर अपने प्रक्षेपास्त्र चलाना चाहते हैं. मध्यस्थता करने के लिए रीगन प्रशासन ने श्री फिलिप हबीब को जब लेबनान की यात्रा पर भेजा तब वह श्री बेगिन से भी मिले और इस भेंट—के तुरंत बाद फिलीस्तीनी ठिकानों पर इस्राइली विमानों का हमला शुरू हो गया. गोलाबारी ही गोलाबारी. क्या इस्राइल चाहता है कि अमेरिका भारी कीमत चुका कर भी इस्राइल की इस नीति का समर्थन करता रहे?

लेकिन हम सारी जिम्मेदारी श्री बेगिन पर ही नहीं डालना चाहते. उन्हें अपने देश में चुनाव जीतने के बाद किन्हीं समस्याओं का सामना करना पड़ रहा होगा. हो सकता है कूटनीति के कारण कुछ और भी संकट पैदा हुआ हो. पर मुख्य जिम्मेदारी तो राष्ट्रपति श्री रोनाल्ड रीगन पर आती है. श्री रीगन सोवियत विरोधी मोर्चा तैयार करने के नाम पर धड़ाधड़ इस्राइल को हथियार भेजते रहे हैं. एक ओर तो इस्राइल को इन हथियारों की सप्लाई और दूसरी ओर साऊदी अरब को भी हथियार देते रहना दोनों ही बातें एक दूसरे से मेल नहीं खातीं. इस तरह क्या श्री रीगन फिलिस्तीनियों के साथ इस्राइल के सह अस्तित्व का लक्ष्य प्राप्त कर सकते हैं? अंत में कहना यही पड़ता है कि पश्चिमेशिया के बारे में रीगन प्रशासन की कोई नीति ही नहीं.

इसी प्रश्न पर प्रसिद्ध ब्रितानी साप्ताहिक इकॉनोमिस्ट ने भी इस्राइल की आलोचना की और यही आरोप लगाया कि अमेरिकी विमानों और अस्त्र-शस्त्र से इस्राइल अपने आक्रामक उद्देश्य प्राप्त करने में लगा है. पत्र का विचार है :

'इस्राइल के प्रधानमंत्री श्री बेगिन अमेरिकी पैसे और हथियारों का इस्तेमाल कर अमेरिकी हितों को ही नुकसान पहुँचा रहे हैं. पता नहीं राष्ट्रपति रीगन कैसे यह सब बर्दाश्त कर रहे हैं. उचित हो या अनुचित अमेरिका इस्राइल के सभी कामों का समर्थन कर के इतना अपने देश को नहीं जितना कि इस्राइल को नुकसान पहुँचा रहा है. आज कोई भी इस्राइल की सैनिक शक्ति और कुशलता को चुनौती नहीं दे रहा. इस्राइल उन फिलीस्तीनी छापामारों पर हमला जरूर कर सकता है, जो लेबनान के ठिकानों से हथियारों के साथ छापामार कार्यवाइयाँ कर रहे हैं. लेकिन अगर सीरिया इस युद्ध की लपेट में आ जाता है तो इस्राइल का नुकसान ज्यादा होगा. पर इस से अपने पड़ोसी पर हमला करने की इस्राइल की क्षमता कम नहीं होगी. सही हो या गलत आज अमेरिका इस्राइल के सभी कामों से जुड़ा हुआ है. क्योंकि हर कीमत पर अमेरिका इस्राइल के साथ अपनी मित्रता रखना चाहता है. रीगन-प्रशासन अरब देशों के साथ अपने सभी मतभेद समाप्त कर उन्हें अपने खेमे में रखने को उत्सुक हैं. लेकिन आज की रीगन प्रशासन नीति को देखते हुए तो यह संभव नहीं लगता.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

एक साधारण दिमाग की पुकार

विपिनकुमार अग्रवाल

साधारण दिमाग परिचित पिष्टोक्तियों को विदेशी भाषा में लिख कैसे चिंतन करने की हामी भरता है, इस का उदाहरण श्री अखिलेश्वर झा का तीन भागों में छपा लेख है—'अंग्रेजी का महत्व', टाइम्स ऑफ इंडिया, जुलाई 10,11, 13, 1981.

झा जी के कुछ अंधविश्वास इस प्रकार हैं: (1) अंग्रेजी भारत में जम गयी है, (2) केवल पचास वर्ष पुरानी भाषा को संविधान में राष्ट्रभाषा का स्थान देना भारतीय नेताओं की नासमझी का फल था, (2) जिस हिंदी ने महात्मा गांधी को सारी जनता में राष्ट्रीय भावनाओं को जाग्रत करने में पूरी सहायता की वह आज राष्ट्रीय आकांक्षाओं और अनुभवों को व्यक्त करने में एकदम असमर्थ है, (4) समस्त हिंदी लेखन में दयनीय बौद्धिक गरीबी है, (5) अंग्रेजी ने भारत में एक जीवंत सृजनात्मक भूमिका अदा की है, (6) हिंदी के प्रमुख, सफल लेखक अंग्रेजी के एम. ए. रहे हैं, (7) पिछले तीस वर्षों में हिंदी में प्रेमचंद, निराला, प्रसाद और दिनकर जैसे लेखक पैदा नहीं हो पाये हैं क्योंकि अंग्रेजी की पढ़ाई पर इधर कम ध्यान दिया गया है, और (8) जवाहरलाल नेहरू ने मातृभाषा में एक दिन भी शिक्षा नहीं पायी और वह 'मातृभाषा सिद्धांत' के शिकार हो गये. छः और सात में जो अंतर्विरोध है, वह देखने लायक है. पूरे लेख में झा जी ने एक ही मौलिक बात कही है और वह यह कि गाँव गाँव में अंग्रेजी फैलायी जाये. ऐसा दिवास्वप्न अंग्रेजी के कुएँ में बसे झा जी को ही शोभा देता है.

जब आदमी अपने दिमाग को विदेशी भाषा में प्राप्त सूचनाओं से भर लेता है, तब वह तर्कसंगत होने, स्वसंगत होने और विषय को गहराई से सोचने समझने के लिए अपने को नाकाबिल पाता है. झा जी के ही अनुसार 1947 में करीब एक प्रतिशत भारतीय अंग्रेजी जानते थे और आज करीब ढाई प्रतिशत. हम जनतंत्र में विश्वास करते हैं. यह विश्वास हमें (ढाई प्रतिशत को) सब से पहले अंग्रेजी के माध्यम से मिला. अतः अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा मानना चाहिए. इसे जनसाधारण में घर घर फैला देना चाहिए (ढाई प्रतिशत की सहायता से) आदि.

अंग्रेजी के कान, नाक, आँख, और मुँह से लैस झा जी हिंदी को हरा ले जाने की मुद्रा में हैं. जो उन्हें रोकेगा वह अंध हिंदीभक्त है, जो उन से लड़ने आयेगा उस बेचारे के पास अपढ़ बानरों और आदिवासियों की सेना के अलावा होगा क्या?

शेक्सपियर के समय में इंग्लैंड के संभ्रांत समाज में फ्रांसीसी भाषा का बोलबाला था. वहाँ के उस समय के झा जी भी ऐसी ही बे सिर पैर की बातें फैलाते थे. उन की चलती तो वह शेक्सपियर को फ्रांसीसी भाषा में लिखने पर मजबूर कर देते. तब आज की अंग्रेजी का पचास वर्षों का भी इतिहास नहीं था, न ही उस में इतिहास, भूगोल, राजनीति और विज्ञान पर किताबें थीं. यह साधारण समझ की बात है कि प्रकाशकगण सभी विषयों पर हिंदी में किताबें तभी छापेंगे जब सब कार्य हिंदी में होने लगेगा और उन की बिक्री के लिए उचित वातावरण बनेगा.

अंग्रेजी का लेखक केवल अंग्रेजी पढ़ता है. हिंदी का लेखक अन्य भाषाएँ भी पढ़ता है. इतिहास से भी सीखता है. विदेशी भाषा का चमत्कार उस की लेखनी में न होने के कारण कुछ नया कहने का भार उस पर अधिक है. जब हम किसी छोटे बालक को अंग्रेजी या फ्रांसीसी, बोलते सुनते हैं तो आश्चर्य में पड़ जाते हैं कि देखो यह कैसा बोल रहा है. क्या बोल रहा है, इस पर ध्यान नहीं देते. पर यदि वह हिंदी बोलता है, तब हमें आश्चर्य नहीं होता और इस पर अधिक ध्यान देते हैं कि क्या कह रहा है. अतः हिंदी में लिख कर अपना सिक्का जमाना कहीं अधिक श्रमसाध्य है और प्रतिभा की माँग करता है. पुराने मुहावरों के सहारे दकियानूसी उधार लिये विचारों को ऊटपटाँग ढंग से रख देना अंग्रेजी के बौद्धिकों पत्रकारों के लिए काफी है, क्यों कि हम इसी से मुग्ध हो जाते हैं कि यह सब अंग्रेजी में लिखा हुआ है. ऐसी भाषा का जीता जागता उदाहरण झा जी का अंग्रेजी के महत्व पर लिखा हुआ लंबा लेख है. इंग्लैंड में कौन अंग्रेज पत्रकार बौद्धिक आज ऐसी भाषा लिखेगा? हिंदी में कभी कुछ पढ़ लेने का एक असर अवश्य उन पर है कि पूरे लेख में विनोदशीलता का अभाव है.

यदि भाषा का लंबा इतिहास ही एकमात्र कसौटी है तब तो संस्कृत में हमें कार्य करना चाहिए था. संविधान बनते समय जब हिंदी का इतिहास केवल पचास वर्ष का था तब भारत में अंग्रेजी का इतिहास इस से कई गुना था. यदि दो सौ वर्ष का इतिहास होने के कारण अंग्रेजी में ही कार्य होना चाहिए तो यह ध्यान देने योग्य बात है कि भारत में अंग्रेजी में जो काव्य और उपन्यास रचे गये वे सब के सब इतनी साधारण कोटि के क्यों हुए? जैनेंद्र का 'त्यागपत्र' और रेणु का 'मैला आँचल' के सामने सारा भारतीय अंग्रेजी उपन्यास साहित्य हल्का है. निराला के सामने कौन भारतीय अंग्रेजी कवि ठहरेगा? पूरे संसार के इतिहास में कौन सा ऐसा देश है, जो अपनी भाषा छोड़ दूसरी भाषा को पाल कर महत्वपूर्ण सृजन कार्य कर सका हो? जापान में साहित्य और विज्ञान दोनों ही उन की अपनी भाषा में में पढ़े और लिखे गये. दोनों ही में वे अत्यंत आधुनिक और अंतरराष्ट्रीय स्तर के हैं, जो विज्ञान में शोधकार्य करते हैं, या अंतरराष्ट्रीय व्यवसाय से संबद्ध हैं, अपने काम भर की अंग्रेजी, फ्रांसीसी या जर्मन भाषा सीख लेते हैं. सोचते उसी भाषा में हैं जिस से वे प्रेम करते हैं. इसी लिए हम से इतना आगे हैं यद्यपि कद में हमसे छोटे हैं और स्थिति में अधिक पूर्व में.

जो विज्ञान नहीं जानते, या जो साधारण कोटि के वैज्ञानिक हैं, वे ही यह भ्रम फैलाते हैं कि विज्ञान की शिक्षा केवल अंग्रेजी में ही दी जा सकती है. रमन और सत्येंद्रनाथ बोस ने कभी ऐसी बेतुकी बात नहीं कहीं . इस का उलटा ही कहा. भाषा और सृजनात्मक चिंतन का गहरा संबंध होता है. इसे वे ही महसूस कर सकते हैं जो सृजनात्मक कार्यों से उलझे हैं. सृजन का सिद्धांत साहित्य और विज्ञान के लिए अलग अलग नहीं हो सकता. मूल प्रक्रिया में दोनों एक हैं. दिशा में और कच्चे माल में अलग अलग हों, यह स्वाभाविक है.

किसी देश की राष्ट्रभाषा विकसित या अविकसित नहीं होती उस के लोग अवश्य विकसित या अविकसित हो सकते हैं. इस हालत के बहुत से कारण हो सकते हैं. शतरंज और खेलकूद में यदि हम पीछे हैं तो निश्चय ही भाषा से हट कर कहीं और पिछड़ेपन का आधार ढूँढना पड़ेगा. चलचित्र के क्षेत्र में यदि हम कहीं आगे पहुँचे हैं तो अपनी भाषाओं में ही पहुँचे हैं. साहित्य में जब भी हम ने ऊँचाइयाँ छुई हैं तो अपनी भाषाओं में ही. झा जी इसे कैसे भुला सकते हैं कि शरत्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त, प्रसाद, प्रेमचंद और निराला अंग्रेजी में एम. ए. नहीं थे. शायद इसीलिए जो हैं, उन से अधिक ऊँचाई का साहित्य सृजन कर सके. पर तथ्य, प्रमाण और तर्क से झा जी का कोई सरोकार नहीं है.

एक विकसित सभ्यता और उस पर आधारित जीवन रीति को रखते हुए हम विदेशी भाषा को नहीं अपना सकते. यह असंभव है. यदि ऐसा करेंगे तो एक विकलांग सभ्यता को जन्म देंगे, या पूर्णतः अंग्रेज बन जायेंगे. इतना तो झा जी भी मानेंगे कि हम न पूर्णतः अंग्रेज बनना चाहेंगे, न ही बन सकते हैं. झा जी और कुछ भी हों देशद्रोही नहीं हैं. इतना मान कर चलना चाहिए. यह हो सकता है कि देश प्रेम वश वह उस बुढ़िया की तरह हो गये हों जिस ने सुंदर तोतों की बारीक चोंचें काट डालीं ताकि वे उस के फेंके चने चुग सकें.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

राष्ट्रभाषा को अविकसित मान कर झा जी उसे सहज त्याग देने के लिए तत्पर हैं. ऐसे ही कुतर्क के अधीन हमारे न जाने कितने मेधावी नवयुवक देश को अविकसित मान उसे त्याग देने को आतुर हैं. झा जी उन्हें कैसे रोकेंगे? झा जी देश को रख कर विकसित भाषा अपना लेना चाहते हैं. मैं भाषा को रख कर देश को विकसित कर लेना चाहता हूँ. यही इतिहास संगत है, यही तर्क-संगत है, यह मुमकिन है. अंग्रेजी के अधीन अनंतकाल तक अधम साधारण बने रहने से कुछ-नहीं से अपना निर्माण करना अधिक श्रेयस्कर है.

राष्ट्रभाषा का अपमान करना, राष्ट्र-पताका का अपमान करने की तरह है. स्वतंत्र हुए हमें बहुत वर्ष हो गये. इतना तो हमें समझना ही चाहिए. जिस भाषा का गुणगान आप करना चाहें, करें. अपनी भाषा में प्रगति की जितनी राहें सुझाना आप चाहें, सुझाएँ. पर राष्ट्रभाषा के लिए अपमान भरे शब्द तो न कहें.

संवाद प्रतियोगिता

अन्य पुरस्कार (अंतिम किस्त)

उलझनों को खुलासा कर देता तो...

शीतेंद्रनाथ चौधुरी

शुरू से ही यह तमन्ना थी कि शहर के किसी बड़े मशहूर कालेज या विश्वविद्यालय में पढ़ूंगा. अपने कस्बे में भी एक कालेज खुल गया था पर उस के स्तर के प्रति मेरी कोई आस्था नहीं थी और फिर घर की मुर्गी दाल बराबर—मैं तो उसे स्कूल ही समझता था. उस में पढ़ाने वाले प्रोफेसरों को हम मास्साब ही कहते थे. बड़े शहर के बड़े कालेज या विश्वविद्यालय के बारे में मेरी कुछ अलग किस्म की रूमानी धारणा थी. वहाँ प्रोफेसरों को सर कहते हैं और लड़के आपस में अंग्रेजी में बतियाते हैं. मेरी कल्पना का परिंदा इतनी ऊँचाई पर था कि मैंने सोचा एम. ए. के बाद उसी विश्वविद्यालय से पी. एच. डी. करूँगा और फिर वहीं पहले व्याख्याता, फिर रीडर, प्रोफेसर, डीन और इस तरह सीढ़ी दर सीढ़ी बढ़ते हुए अंत में कुलपति बन जाऊँगा. मेरे इस सोच में मेरे मैट्रिक पास बड़े भैया का भी बड़ा योग है. वह अपने ही मोहल्ले में प्राथमिक कक्षाओं के शिक्षक हैं. पर मन में आसमान छूती इमारत की तरह ऊँची आकांक्षाएँ पालते हैं. खुद जब प्राइमरी की मास्टरी से आगे न बढ़ सके तो उन्होंने अपनी महत्त्वाकांक्षाओं का 'इंजेक्शन' मेरी नसों में भरना शुरू किया, जिस का प्रभाव मेरे मनोमस्तिष्क पर गहराई से पड़ा. इसलिए इंटर प्रथम श्रेणी में पास करते ही एक दरी में बिस्तर बाँध कर कानपुर प्रस्थान किया.

कानपुर विश्वविद्यालय का सब से बड़ा कालेज डी. ए. वी. कालेज है. इसलिए उसे ही मैंने प्रवेश के लिए चुना. मेरी प्रथम श्रेणी की वजह से फार्म भरने पर प्रवेश तो बिना किसी न नुक्कड़ के मिल गया लेकिन छात्रावास का फार्म भर कर देने पर तमाम सिफारिशों के बावजूद नहीं लिया गया. पता चला कि उस में सारी जगहें पहले से ही भर चुकी हैं. भाई साहब ने अपनी एड़ी चोटी का पसीना एक कर दिया, पर सफल न हुए, तब हार कर मकान की तलाश में निकल पड़े.

हमारा यह अभियान किसी नयी खोज से कम न था. इस के लिए हम गली गली घूमे. जैसे जैसे हम शहर के अंदर और अंदर, धँसते चले गये वैसे वैसे मुझे उस के असली रूप का पता चलता गया. इस से पहले भी मैंने एक दो बड़े शहर देखे थे. मुझे लगा शहरों की लंबाई चौड़ाई में फर्क भले ही हो, पर उस के अंदर के चेहरों में कोई फर्क नहीं होता. वही संकरी अंधेरी गलियाँ, दोनों ओर ठसाठस पक्की इमारतें. नीचे ढाई तीन फुट चौड़ा रास्ता... रास्ते के दोनों ओर गंदी नालियाँ, यहाँ वहाँ बैठे फारिग होते बच्चे. घर के सामने ही मल और कूड़े की ढेरियाँ, बाहर की हवा को अंदर आने की इजाजत नहीं. गाँव कस्बे की खुली हवा में रहने वाला मैं, मेरी तो कुछ ही देर में साँस उखड़ने लगी—दम घुटने लगा. मैं सोच रहा था कि यहाँ कोई कमरा मिलने पर भी मैं कैसे रह पाऊँगा. पर अंदर कालेज में पढ़ने की तीव्र इच्छा ज़ोर मार रही थी, इसलिए उठती हुई उबकाई को भी नाक पर रूमाल रख कर गटक गया.

आखिर तमाम सरगोशियों और कोशिशों के बाद एक कमरे का सुराग मिल ही गया. हमारे कस्बे के जिस लड़के को ले कर मेरे भाई साहब निकले थे, उस के किसी दोस्त ने कहा कि अर्थशास्त्र के किसी भंडारी का गोवालटोली में बहुत बड़ा मकान है. उस में किराये के लिए बने सभी कमरे उठे हुए हैं पर अहाते से सटा गेट के पास एक कमरा खाली पड़ा है. पहले उस में गेट पर पहरा देने वाला और बागबगीचे की देखरेख करने वाला मालीनुमा नौकर रहता था पर जब से उस के दादाजी का स्वर्गवास हो गया और उस के पिता जी भी बीमार पड़ गये, तब से इस घर की सारी शानो शौकत खत्म हो गयी. प्रायः सभी नौकरों को विदा कर दिया गया. इसलिए अब वहाँ नौकर नहीं होने से कमरा खाली पड़ा है. भाई साहब बड़े खुश हुए. मुझे भी मानो हाथों में स्वर्ग मिला. अच्छा हुआ उन की शानोशौकत खतम हो गयी (नहीं तो मुझे कमरा कहाँ से मिलता!) कम से कम रहने की व्यवस्था तो हो ही जायेगी.

शाम से ही मैं उस इकहरे कमरे में अपना बिस्तर बक्सा ले कर दाखिल हो गया. उस आठ गुणा दस फुट के कमरे का, जिस में सामने की ओर एक छोटी सी परछी भी थी, किराया तय हुआ सौ रुपये. बहरहाल, उस की कोई बात नहीं, भाईसाहब जोश में थे. उन्होंने फौरन सौ रुपये एडवांस थमाया. और खुश हो कर संध्या सात की गाड़ी पकड़ने स्टेशन की ओर चल पड़े.

भाई साहब के जाते ही मुझ पर खालीपन हावी होने लगा. भंडारी का आलीशान मकान सामने दिख रहा था. उस के सारे दरवाजे बंद. विशाल अहाते में उस इमारत और मेरी खोली के बीच एक अच्छा खासा फासला था. जो पहले कभी बगीचा रहा होगा पर अब तो उस में ऊँची ऊँची घास और झाड़ झंखाड़ उग आये थे. बरसात होने से एक तरह से जंगल सा बन गया था. अहाते से लगे कुछ ऊँचे ऊँचे पेड़ भी थे. आसपास कोई आदमी नहीं दिखायी पड़ता था. दूसरे किरायेदार मकान के दूसरी ओर रहते थे. ज्यों ज्यों रात गहराती गयी, वैसे वैसे भुतहा वीरानापन मेरी छाती पर सवार होता गया.

मैंने सारी रात उनींदे रह कर ही गुजारी. वैसे गेट पर बने इस कमरे के किरायेदार के रूप में मुझ से ऐसी ही अपेक्षा भी थी. क्योंकि बिना पगड़ी के इतनी सहूलियत से कमरा देने के पीछे मकान मालिक का यही उद्देश्य निहित था कि अप्रत्यक्ष रूप से पहरेदारी का भी काम चल जायेगा.

सुबह शौच के लिए पाखाने की तलाश में निकला. शहर है, इसलिए मैदान जाना तो संभव नहीं. ऊँची ऊँची घासों के बीच चल कर अहाते के किनारे बंगले के दूसरी ओर गया, जहाँ सभी किरायेदारों के लिए सामूहिक संडास था. दो या तीन भागों में संडास बने हुए थे. हर एक में पहले अंदर झांक कर देखा. सभी मल मूत्र से लबालब—एक नारकीय दृश्य.

मैं शहरी जीवन का अभ्यस्त न था. मैंने मन को प्रबोध दिया कि शहर की जिंदगी ऐसी ही होती है. यहाँ कस्बे या गाँव जैसा खुलापन कहाँ नसीब होगा. पढ़ाई के महती उद्देश्य और अपनी ऊँची आकांक्षा को मन में पोसते हुए मैं उस वीरानेपन को अपने में जज्ब करने और उस घिनौनेपन में जीने का अभ्यास करने लगा.

अब शुरू हुई दूसरी समस्याएँ. होटल का खर्च चलाना संभव न था. भाई साहब का जोश भी उन की आर्थिक तंगी के कारण एक दो माह बाद ही ठंडा पड़ गया. घर से रुपये आना प्रायः बंद हो गया. कई बार लिखने पर पचहत्तर अस्सी रुपये आ जाते. इतने में कमरे का किराया तक न पूरता, बाकी खर्चों का तो कहना ही क्या. इस आर्थिक संकट का सामना

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

वह पढ़ कैसे सकता था

संजीव पाठक

विद्यार्थियों के निवास से संबंधित इस बार के विषय ने बरबस ही अपने एक परिचित की याद ताजा कर दी है. जो पढ़ने लिखने में बेहद तेज था. कक्षा एक से ले कर इंटर तक उस ने हमेशा प्रथम श्रेणी को बनाये रखा. परिवार ग्रामीण और गरीब था. पिता बढ़ई-गिरी की गाढ़ी कमाई से उसे पढ़ा रहे थे. इंटर कर लेने के बाद वह इलाहाबाद विश्वविद्यालय में प्रवेश के लिए गया. प्रवेश उसे बिना अधिक जहमत उठाये मिल गया, मिल तो उसे होस्टल भी जाता किंतु वह अपनी पत्नी को वहाँ बुलाने के ख़याल से किसी कमरे की तलाश करने लगा.

इंटर में ही उस की शादी उस के पिता ने माँ की अंतिम इच्छा के रूप में उस के जीते जी कर दी थी. जैसे तैसे दस-पंद्रह दिन की दौड़-धूप के बाद उसे एक गंदी बस्ती में कमरा मिल तो गया किंतु सीलनभरा, बदबूदार और फिर अच्छा कमरा ले पाने में वह खुद भी तो असमर्थ था. गाँव आ कर उस ने पत्नी के साथ वापस पहुँचकर उस कमरे में प्रवेश किया. सब कुछ ठीक ठाक चलता रहा. उस बदबूदार वातावरण को दोनों प्रयासों से ठीक करते हुए अपने दिन काटने लगे.

अध्ययन चलते हुए करीब छः माह बीते थे कि उस पर कहर बरपा गया. एक दिन जब वह विश्वविद्यालय से लौटा तो उसने देखा कि कमरे के किवाड़ खुले पड़े हैं और कमरे में उस की किताबों के सिवाय कुछ नहीं है, न ही उस की पत्नी. वह घबरा गया एकदम उस की नजर चारपाई पर पड़ी कापी-पेंसिल पर पड़ी. अपनी कापी जब उसने उठा कर पढ़नी शुरू की तो उस में लिखा था:—

प्रिय,

तुम्हारे जाने के बाद मैं रोटी बना रही थी कि मुहल्ले के दो भारी भरकम लड़के आये और बोले कि इस कमरे में रात रात भर तक बिजली क्यों जलती है? मैंने बताया कि तुम पढ़ते हो. तो वे गुस्से में भर कर बोले—'स्साला, डिप्टी कलक्टर बनेगा. रात को भी चैन से सोने नहीं देता' और दोनों मुझे मारने के लिए लिपट पड़े. उन्होंने चूल्हे से जलती हुई लकड़ी खींच ली और मुझे धमकाया. मेरे बहुत ना-नुकर करने के बाद भी किवाड़ बंद कर उन्होंने घर की चीजें बटोर लीं और जाते समय दोनों ने बारी बारी से मेरी आबरू. . . तुम्हारे आने से पहले मैं संगम में पवित्र होने जा रही हूँ.

तुम्हारी . . . . . .

पढ़ने के बाद पहले तो वह दौड़ा-दौड़ा संगम पर गया, जहाँ उसे काफी देर ढूँढने के बाद भी वह नहीं मिली. पागलों की तरह रोता-बिलखता वह अपने एक प्रोफसर के पास भी गया. उन्होंने उसे रिपोर्ट दर्ज कराने को कहा किंतु उस ने उन की एक न सुनी और उन से किराये भर के रुपये ले कर अपने गाँव चल पड़ा.

घटना का पूरा विवरण उस के ही मुख से सुने मुझे कई साल हो गये हैं. पता नहीं वह तब से कहाँ चला गया है. फिर नहीं मिला कभी. ऐसे प्रतिभाशाली छात्रों की प्रतिभा कायम रखने के लिए कितने लोग चिंतित हैं?—**द्वारा श्री राजीव पाठक, हिंदी अधिकारी, बैंक ऑफ इंडिया, हिंदीकोष्ठ, पो. बॉ. नं. 5, सुपर बाजार, अहमदाबाद, गुजरात**

करने के लिए मैंने एक ट्यूशन कर ली और कमरे में ही भोजन बनाने लगा. रोटी बनाने की कला मुझे आती न थी. देहात के एक साथी छात्र ने आसान तरीका बतलाया कि दाल का दूल्हा बना लिया करो. सो मैं दाल में ही आटे की गोल टिकिया बना कर छोड़ देता था और खा कर कालेज चल देता था. कभी चावल के साथ दाल और आलू डाल लेता था. कई बार भुना चना फांक कर ही काम चला लिया करता था. मगर अपनी इस हालत पर मन बड़ा खिन्न रहता और पढ़ाई में मन बिल्कुल न लगता.

ऐसे ही वक्त में एक दिन हाईस्कूल का वह लड़का, जिसे मैं ट्यूशन पढ़ाता था, मेरे यहाँ आया. उसने मेरी सीलनभरी कोठरी और फर्श पर बेतरतीब पड़े बक्से, बिस्तर और किताब कापियों को देखा. उस ने मेरा खाना भी देखा. उसे मेरी हालत पर बड़ा तरस आया. दूसरे ही दिन उस के पिता जी आ कर मेरा सारा सामान अपने घर उठा ले गये. मेरे पढ़ाने के तरीके और व्यवहार से वह बड़े प्रभावित थे और उन का मेरे प्रति बड़ा स्नेह था. उन्होंने कहा—तुम यहीं लड़कों के पढ़ने वाले कमरे में रहो. खुद पढ़ो और इन्हें भी पढ़ाओ. तुम्हारे खाने रहने का कोई खर्च नहीं. मुझे मानो बिना माँगे मोती मिला. मैं खुश हो कर पढ़ाई में जुट गया. अब और क्या चाहिए—एक साफ सुथरा कमरा, फ्लश लैट्रिन, स्नानघर, सब कुछ. पर मेरा मोह जल्दी ही टूटा. दो ही दिनों में मैंने पाया कि मैं पढ़ नहीं रहा हूँ, सिर्फ पढ़ा रहा हूँ. इस उम्दा बंदोबस्त के एवज में एक के बाद एक पढ़ने वालों का तांता बंधा रहता. बड़ा भाई पढ़ कर गया होता तो आठवीं वाला छोटा भाई सवाल पूछने आ जाता. वह निकला नहीं कि सातवीं वाली बेबी अंग्रेजी के अर्थ पूछने आ जाती. फिर पाँचवीं वाला मुन्ना अपनी सामाजिक अध्ययन की किताब ले कर पहुँच जाता. इस तरह सभी की पढ़ाई होती, केवल मेरी ही न हो पाती. मैं कमरे में होता तो जितना खुश रहता, कालेज में पहुँचता तो उतना ही क्षुब्ध. किसी भी विषय की पढ़ाई समझ में न आती क्योंकि न तो मैं घर पर पहले पढ़ाई गयी पाठ्य वस्तु को दुहरा पाता और न ही बाद में उस पर नोट्स बना पाता. मैं अपने साथियों की तुलना में अपना मूल्यांकन करता और आहिस्ते आहिस्ते मेरे अंदर एक हीन भावना पनपती चली गयी.

यूँ मेरे प्रोफसर मेरी सामान्य बुद्धि से प्रभावित थे और मुझ से इम्तिहान में अच्छे परिणाम की उम्मीद भी करते थे. पर बिना तैयारी के बुद्धि किस काम की. छमाही का इम्तिहान हुआ. अंत के एक दो परचों में तो बैठा ही नहीं. शुरू के जिन परचों में बैठा, उन में भी मैं एक दो प्रश्नों से ज्यादा हल न कर सका. मैं अपनी स्थिति से पूरी तरह वाकिफ था. मुझे उस सदमे का भी पूरा अहसास हो चुका था. जो कापियाँ जाँचने के बाद मेरे प्रोफसरों को मेरे किये पर होने वाला था. मैं इस बात को भी समझ रहा था कि अगर हालत इसी तरह बनी रहे तो विश्वविद्यालय की परीक्षा में पहला दर्जा तो दूर रहा, पास होने के भी लाले पड़ जायेंगे. आखिर इस तरह की पढ़ाई से क्या लाभ? मुझे अपनी महत्त्वाकांक्षाएँ बार बार याद आतीं. मैंने मन ही मन तय कर लिया कि यहाँ इस तरह रह कर पढ़ने से अच्छा है अपने ही कस्बे के कालेज में पढ़ना—घर की दालरोटी खा कर निर्द्वंद्व रूप से पढ़ाई करने पर डिवीजन तो आयेगी.

और तभी एक रात बिना किसी को कुछ बताये मैं अपना बोरिया बिस्तर बाँध कर निकल पड़ा और कानपुर सेंट्रल स्टेशन पहुँच कर अपने कस्बे के छोटे से स्टेशन के लिए टिकट कटा लिया.

वह साल मेरा बेकार गया. अगले वर्ष मैंने अपने कस्बे के ही कालेज में प्रवेश लिया. मैंने अपनी पढ़ाई खत्म की मगर अपनी आकांक्षाओं के मुताबिक कुछ भी न बन पा कर महज़ हाईस्कूल का एक बौना टीचर हो कर रह गया हूँ. आज सोचता हूँ कि जल्दबाजी में यह निर्णय न ले कर यदि मैं अपनी मानसिक उलझन का खुलासा मुझ पर स्नेह रखने वाले अपने प्रोफसरों के सामने करता तो शायद उन के द्वारा कोई रास्ता निकाला जा कर मुझे उस संकट से उबार लिया जाता. और मुझे अपनी आकांक्षाओं को बेमौत दफनाना न पड़ता.

—**व्याख्याता, शासकीय गुरुकुल विद्यालय, पेंड्रारोड, जिला बिलासपुर, (म. प्र.).**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिंदगी और मौत के प्रतिनिधियों में टक्कर

केशव राव जाधव

(पिछले अंक में हैदराबाद के दंगों पर आप श्रीराम शर्मा की रपट पढ़ चुके हैं. यहां लोहिया विचार मंच के समाजवादी नेता और प्राध्यापक केशवराव जाधव दंगों के सामाजिक राजनैतिक संदर्भ का विवेचन कर रहे हैं.—सं.)

चिड़ियों के चहकने और पड़ोस में किसी बच्चे के रोने की आवाज के सिवा और दूसरी आवाज नहीं. हुसैनी आलम, जो पुरानेशहर का केंद्र है, बड़ी चहल पहल का इलाका है, लेकिन चार रोज से कर्फ्यू और दंगों की जकड़ में है. मेरे दोस्त जब भी मुझ से मिलने आते हैं यह इलाका छोड़ने के लिए कहते हैं, नये शहर में जा बसने के लिए. लेकिन मुझे इस जगह से लगाव है. यहीं पर हमने अपने जीवन के सब से अच्छे दिन गुजारे, राजनीतिक सामाजिक लड़ाइयां लड़ीं. यहीं पर अपने देश का रंग और खुशबू है—और देश का दुख और पीड़ा भी. इस को कैसे छोड़ें? नया शहर तो महज यूरोप की घटिया नकल है. पुराना शहर एक बड़े गांव की तरह है जहां सब एक दूसरे को जानते हैं. बस्तियों के नाम होते हैं—कूचे सनम, देवला नरसिंहमान, हुसैनी आलम, दुध बावली, उमदा बाजार, लाल दरवाजा, मोगलपुरा, जलाल कूचा, जाली हनुमान, छोटा बाजार, लंगर हौज, चेलापुरा, चंदुलाल बारादरी, टप्पा चबूतरा, बेगम बाजार, चौराहा जिसी, चूड़ी बाजार, लाड बाजार और कितने ही ऐसे दूसरे जो अपने सामाजिक सांस्कृतिक चरित्र का पता देते हैं. कुछ मध्यवर्गीय दिमाग वाले लोग कहते हैं—यह तो पाकिस्तान है, हालांकि पिछले तीस साल में पुराने शहर में हिंदुओं की आबादी 30 प्रतिशत से बढ़ कर 50 प्रतिशत हो गयी है.

पिछले साठ साल में पुराने शहर में पांच बड़े दंगे हुए जिन में से चार पिछले दो साल में और उन में दो केवल चुनावों को नजर में रख कर. लेकिन किसी भी दंगे में आम लोगों ने हिस्सा नहीं लिया. यह स्थिति कब तक रहेगी कहा नहीं जा सकता. वैसे मरने वालों में केवल आम लोग होते हैं.

क्या कारण हैं इन दंगों के जब कि आम आदमी की हिस्सेदारी केवल भाषा तक ही सीमित है? भावनाओं को लिया जाये तो पुराने शहर के लोग किसी भयंकर सांप्रदायिक नफरत में जकड़े हुए नहीं हैं हालांकि ऊपरी तौर पर हिंदुओं और मुसलमानों को एक दूसरे से कुछ चिढ़ जरूर है. फिर भी यह चिढ़ उन को एक दूसरे के गले काटने तक नहीं ले जाती, झुंझलाहट तक ही सीमित रखती है. इस चिढ़ के ऐतिहासिक कारण हैं. इस को खत्म भी किया जा सकता था, लेकिन पैसे और वोट की राजनीति इस को बढ़ावा ही दे रही है. दूसरी तरह की राजनीति करने वाले अभी कमजोर हैं. इन में छटपटाहट जरूर है लेकिन कहीं कोई कमजोरी की बात नहीं बनती या शायद पुराने शहर में गरीबी और इतिहास की घुटन इतनी ताकतवर है कि कुछ कर नहीं पाते. पहले इतिहास कुतुबशाही साम्राज्य शहर हैदराबाद के आसपास के जिलों तक सीमित रहा. यह ज्यादातर तेलुगूभाषी इलाके थे. इस साम्राज्य के पहले यहां यादवों का राज था और उन्होंने पहले पहल वह किला बनाया जो आजकल गोलकुंडा के नाम से जाना जाता है. दरअसल वह है गोल्ला कुंडा यानी ग्वालों का किला, तेलुगू में ग्वाले को कहते हैं गोल्ला. इस पर कब्जा जमा कर कुतुबशाहियों ने उस को और ज्यादा विशाल बनाया, किले के अंदर बड़े महल और बाजार बनाये. कुतुबशाही कुल मिला कर उदारवादी थे और आखिरी सुल्तान ने शिवाजी की मदद से मुगलों का मुकाबला भी किया था. शिवाजी की मृत्यु के बाद वह औरंगजेब से हार गया. इस तरह शिया साम्राज्य खत्म हुआ और मुगलों का राज आया. औरंगजेब की अनुदार नीतियों से शिया और हिंदू नाराज रहे और आज भी हिंदुओं और शियाओं में एक तरह का बंधन है. मुगल साम्राज्य के आखिरी दिनों में निजामुलमुल्क ने दिल्ली से आ कर हैदराबाद पर अपना कब्जा जमा लिया और निजामशाही की नींव रखी. निजाम राजा हमेशा अंग्रेजों और मराठों से हारते रहे और टीपू सुल्तान से भी इन की नहीं बनी. दरअसल यह अंग्रेजों के पिछलग्गू ही बने रहे. ढीले ढाले प्रशासन और ऐयाशी के लिए यह जाने जाते थे. सिवाय आखिरी निजाम मीर उस्मान अली खान के जो अपने आप को सारी दुनिया के मुसलमानों का नेता और इस्लाम का एकमात्र रखवाला समझने लगा. इसी कारण उस की जिन्ना से नहीं पटी.

मीर उस्मान अली खान के दौर में बहादुर यारजंग नाम के नवाब ने मजलिस इत्तहादुल मुसलमीन की बुनियाद डाली. इस घटना से चंद वर्ष पहले हैदराबाद राज्य में जिस में तेलुगू, मराठी और कन्नड़ क्षेत्र थे, आर्य समाज की स्थापना हुई. आर्य समाज का देश में इतिहास कुछ ऐसा रहा है कि वह अर्ध धार्मिक राजनीतिक आंदोलन बन गया. सनातन धर्म को खत्म कर वैदिक धर्म की स्थापना करना ही आर्य समाज का मकसद नहीं रहा. सनातन धर्म ने अपने भ्रष्ट रूप से देश को गिराया, यह भी आर्य समाज की दृष्टि रही. सारे दूसरे धर्म गैर वैज्ञानिक हैं यह उस का तीसरा दृष्टिकोण रहा. हैदराबाद में आर्य समाज ने न केवल सनातन धर्म पर वार किये बल्कि हिंदुओं पर जो भी मुगलाई या इस्लामी असर था उस को भी खत्म करने की कोशिश की—जैसे हिंदुओं का दरगाहों पर जाना, मुहर्रम में हिस्सा लेना, रूमी टोपी पहनना वगैरह. आर्य समाज के नेता इस्लाम और क्रिस्तानी धर्मों पर ऐसे ही सैद्धांतिक हमले करते जैसे सनातन धर्म पर. दिल्ली के रामचंद्र देहलवी आर्य समाज के सब से बड़े लोकप्रिय नेता थे और वह कुरान और बाइबिल पर महारत का दावा करते थे. उन के भाषणों से जहां कुंठित मध्यवर्गी हिंदू को बड़ी खुशी होती मध्यवर्गीय मुसलमान को उतनी ही चिढ़. उसी समय इत्तहादुल मुसलमीन का जन्म हुआ. बहादुर यारजंग ने इस के माध्यम से एक तरफ

> **पिछले साठ साल में पुराने शहर में पांच बड़े दंगे हुए जिन में से चार पिछले दो साल में और उनमें दो केवल चुनावों को नजर में रख कर. लेकिन किसी भी दंगे में आम लोगों ने हिस्सा नहीं लिया. यह स्थिति कब तक रहेगी कहा नहीं जा सकता. वैसे मरने वालों में केवल आम लोग होते हैं.**

निजाम के इस दावे को चुनौती दी कि इस्लाम केवल उस के कारण ही बाकी है और दूसरी तरफ आर्य समाज के सैद्धांतिक राजनीतिक हमले का जवाब देना चाहा— बदकिस्मती से हैदराबाद की सांस्कृतिक राजनीतिक हालत ऐसी थी—हिंदू बहुल क्षेत्र, मुसलमान राजा, सड़े गले हिंदू समाज को सुधारने की आर्य समाज की कोशिश, प्रजातंत्र को लाने की लड़ाई, समाजवादी और साम्यवादी आंदोलनों की शुरूआत, इत्तहादुल मुसलमीन द्वारा प्रजातांत्रिक आंदोलनों का विरोध, निजाम का अपने आप को इस्लाम का एकमात्र रखवाला समझना और इसी कारण एक तरफ आर्य समाज और दूसरी तरफ प्रजातांत्रिक आंदोलन को खत्म करने की कोशिश करना: कुल मिला कर संघर्ष हिंदू—मुस्लिम बन गया. समाजवादी और साम्यवादी आंदोलन, जो

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हिंसावादी थे, और जिन के नेताओं कार्यकर्ताओं में मुसलमानों की काफी संख्या थी—वे भी इस स्थिति को बदल नहीं सके. इस बीच इत्तहादुल मुसलमीन ने मुस्लिम लीग से अपना रिश्ता जोड़ना आरंभ किया और बहादुर यारजंग ने कश्मीर में सांप्रदायिक तनाव बढ़ाने का प्रयास अपने कश्मीर के दौरे में किया. मोहम्मद अली जिन्ना ने भी हैदराबाद का दौरा किया गो कि उन के और निजाम जैसे आत्मकेंद्रित लोगों की पटी नहीं. इत्तहादुल मुसलमीन को अपना प्रतिद्वंद्वी मान कर निजाम ने, कहा जाता है बहादुर यारजंग को जहर दिलवा दिया. बहादुर यारजंग सांप्रदायिक भावनाओं के बावजूद कितना सभ्य आदमी था इस का अंदाजा हिंदुओं को तब हुआ जब कासिम रजवी मजलिस का नेता बना. हैदराबादी सामंतवाद के कुछ अच्छे गुण बहादुर यारजंग में थे, लेकिन इलाहाबाद से आये मध्यवर्गी सांप्रदायिक मानसिकता वाले कासिम रजवी में मजहबी जुनून के सिवा कुछ भी नहीं था. यह जुनून हैदराबाद की भौगोलिक स्थिति के कारण जिस की समस्याएँ 1947 के बाद साफ नजर आने लगीं पागलपन की हद तक बढ़ गया और लूटपाट, बलात्कार और हत्या की राजनीति में बदल गया. इस से पहले निजाम ने आर्य समाज के ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' पर पाबंदी लगा कर काफी तनाव पैदा कर दिया था. एक बड़े संघर्ष के बाद पाबंदी उठी मगर तब तक काफी राजनीतिक खराबी पैदा हो गयी थी.

हैदराबाद का पहला बड़ा हिंदू मुस्लिम दंगा इसी दौर में हुआ जिस में बहादुर यारजंग के दो भतीजों की हत्या हुई. इस दंगे में एक तरफ इत्तहादुल मुसलमीन के कार्यकर्ता और दूसरी तरफ लोवावाडी-घुलपेठ के रहने वाले कट्टर आर्यसमाजी थे. इस में मजलिस बुरी तरह पिटी लेकिन दंगा फैला नहीं. कहा जाता है कि हैदराबाद के लोग लड़ाकू नहीं. कहना चाहिए हैदराबाद के लोग सभ्य हैं, मनुष्य की जान की कदर करते हैं, अमन चैन से रहना चाहते हैं. इसी कारण दंगा नहीं फैला.

कासिम रजवी की राजनीति के चलते दंगे तो नहीं हुए मगर चारों तरफ असुरक्षा की भावना थी. 'पुलिस एक्शन' ने यह अनिश्चित स्थिति समाप्त की. एक युग समाप्त हुआ, उस युग के अच्छे बुरे गुण पुराने शहर की मानसिकता का हिस्सा बन गये. लेकिन नये युग में चाहे जो कुछ हुआ हो सांप्रदायिकता को समाप्त करने की कोशिश नहीं हुई. राजनीतिक दलों ने 1952 के चुनाव में पुराने शहर में इस बीमारी को बढ़ावा ही दिया—विशेष कर कांग्रेस और साम्यवादियों ने. पुराने शहर में मुस्लिम द्वेष कांग्रेस साम्यवादी संघर्ष में बदल गया और समाजवादी इस नयी स्थिति से इतने चकित रह गये कि कुछ कर ही नहीं सके. साम्यवादियों ने चुनाव जीतने के लिए मुसलमानों से कहा कि 'पुलिस एक्शन' दरअसल मुस्लिम विरोधी था और कांग्रेसियों ने हिंदुओं को भड़का कर अपना उल्लू सीधा करना चाहा. दुर्भाग्यवश आर्य समाज के कार्यकर्ता कांग्रेस और मजलिस के समर्थक साम्यवादी दल में शामिल हो गये. पुरानी लड़ाई नये लेबलों से लड़ी जाने लगी. इस नयी स्थिति का मुकाबला करने समाजवादियों के पास न तो कोई रणनीति थी न ही तैयारी. दरअसल यह सब इतना जल्दी हुआ कि सोचने का समय भी न मिला और 1952 का चुनाव सर पर आ गया.

फिर भी हिंदू और मुसलमान थोड़ा बहुत अलग अलग दलों में बँटने लगे थे. चंद मुसलमान पुराने शहर में समाजवादी आंदोलन की तरफ झुकने लगे, लेकिन कांग्रेस की तरफ उन का झुकाव नगण्य था क्योंकि वे उस समय कांग्रेस-भारतीय सरकार-हिंदी-हिंदू, इन सब को एक चीज मानते थे. पुराना शहर अमीर उमराव की शान शौकत का शहर था, हर दूसरा घर किसी जागीरदार या राजा का होता था. उन के महलों में सैकड़ों लोग काम करते थे या यों कहिए कुछ काम नहीं करते थे फिर भी जागीर से पैसा मिलता था. लेकिन 'पुलिस एक्शन' के बाद जागीरदारी समाप्त हुई, जागीरदार भिखारी हो गये, उन के नौकर चाकर बेरोजगार हो कर सड़कों पर आ गये, ठेला धकेलने लगे, रिक्शा चलाने लगे, औरतें वेश्या बनीं, जीवन में कड़वाहट आ गयी. इन में अधिकांश मुसलमान थे. जो हिंदू थे उन्हें कहीं न कहीं ठिकाना मिल जाता था. आखिर निजाम के दौर में ज्यादातर धंधे, नौकरियाँ, जागीरें, मुसलमानों के हाथ में थीं. जमाने ने पलटा खाया और निजाम विरोध मुस्लिम विरोध बन गया. अब मुसलमान को नौकरी कौन दे, वह भी अनपढ़ को? बाहर से अफसर आने लगे जिन की नजर में मुसलमान तो अलग, हैदराबाद के हिंदू भी केवल चपरासी बनने के लायक थे.

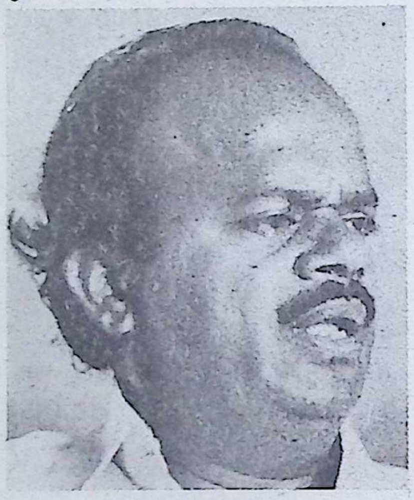

केशवराव जाधव

हवेलियाँ सूनी हो गयीं, महफिलें खत्म हो गयीं, नौकर चाकर बेरोजगार हो कर दर दर की ठोकरें खाने लगे. पुराने शहर का पतन शुरू हो गया, नया शहर बसने लगा. मद्रास, बंबई से अफसर लोग आने लगे जिन को यहाँ के लोगों में कोई दिलचस्पी नहीं थी. वे नदी के उस पार नयी बस्तियाँ बनाने लगे. पुराने शहर की घुटन, गरीबी और बर्बादी का दौर आरंभ हुआ जो अभी तक चल रहा है.

जब कांग्रेस के नेताओं ने देखा कि गरीब मुसलमान और हिंदू उस के नजदीक नहीं आ रहे हैं तो एक गहरी साजिश कर के मजलिस इत्तहादुल मुसलमीन को कब्र से निकाल कर एक घटिया और अवसरवादी आदमी, अब्दुल वाहद उवेसी के हाथ थमा दिया. उस आदमी को केवल उर्दू अच्छी आती थी, और कोई गुण नहीं था. अपनी सभाओं में उस ने अच्छी उर्दू में गंदी बातें कहनी शुरू कीं. वातावरण फिर खराब होने लगा. खुशकिस्मती से आर्य समाज के नेता समाज की जायदाद के झगड़ों में इतना उलझे थे कि उवेसी की तरफ उन का ध्यान नहीं गया. लेकिन कांग्रेस का मकसद पूरा हो गया. 1962 से मुसलमान मजलिस की तरफ जाने लगे, गरीब हिंदू फिर कांग्रेस की तरफ आने लगे. साम्यवादी और समाजवादी चुनौती हैदराबाद में खत्म हो गयी. पुराने शहर के मुसलमान यह समझने लगे कि 'पुलिस एक्शन' केवल उन को बर्बाद करने के लिए किया गया. दूसरे राजनीतिक दलों ने उन को इस विचार से मुक्त करने की कोशिश नहीं की. इस से मजलिस के लिए रास्ता साफ हो गया. दूसरी तरफ हिंदू मजलिस के दुबारा सक्रिय होने से क्षुब्ध हो कर मुस्लिम विरोधी बनने लगे. राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ की शाखाएँ चलने लगीं. आर्य समाज में कम से कम जाति विरोधी और समाज सुधार की भावनाएँ थीं. इस संगठन में तो मुस्लिम विरोध के सिवा कुछ भी नहीं था. लेकिन कुल मिलाकर रा. स्व. से. सं. बहुत छोटा संगठन ही रहा. इसी बीच तीन हत्याएँ हुईं. मरने वाले तीनों हिंदू थे, मारने वाले मुसलमान. अलग अलग कारणों से होने वाली इन हत्याओं में से एक गुंडों द्वारा हुई और दो पैसे के संबंध को लेकर. यह उसी जमाने में हुआ जब कि मजलिस का पुनर्जन्म हो रहा था. आम हिंदुओं में मजलिस के माने हैं कासिम रजवी की मजलिस, गुंडों की मजलिस. दूसरी और तीसरी हत्या को लेकर छोटे पैमाने पर हिंदुओं ने दंगे किये जो चंद घंटों में समाप्त हो गये. फिर भी पुराने शहर के सामाजिक जीवन में जहर आ

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गया, हर किसी ने कड़वाहट महसूस की.

1962 से मजलिस ने शहर से तीन विधानसभाई और लगभग 25 नगर निगम क्षेत्रों पर अधिकार जमा लिया. मजलिस के टिकट पर जो लोग चुनाव जीतते उन में से अधिकांश बाद में कांग्रेस में चले जाते. फिर भी मजलिस का जोर नहीं टूटा. अब तो उस को एक दूसरी जगह से बल मिलने लगा. 1969 में तेलंगाना आंदोलन शुरू हुआ, जो अपनी तरह का अद्भुत आंदोलन था जिस को सारे देश की पुलिस और फौज का एक हिस्सा भी कुचल नहीं सका. इस आंदोलन को तोड़ने के लिए उस समय के मुख्यमंत्री ब्रह्मानंद रेड्डी ने मजलिस और रा. स्व. से. सं. की मदद ली. तेलंगाना के हिंदू मुसलमान टूटे नहीं, दोनों ने मिलकर लड़ाई जारी रखी. आखिर यह आंदोलन धोखाधड़ी से रोका गया: जैसी कोशिशें अब असम में हो रही हैं. फिर भी इस घिनौने प्रयत्न से मजलिस को हैदराबाद में अपनी अहमियत का अहसास हुआ. बाद में हर मुख्यमंत्री ने मजलिस और रा. स्व. से. सं. की मदद की—मजलिस को तो वेंगलराव ने कई करोड़ की जायदाद हवाले की. हर सहायता के बावजूद रा. स्व. से. सं. कमजोर ही रहा. इस बीच अब्दुल वाहद उवेसी का देहांत हुआ और उस का बेटा जिसे उर्दू भी ठीक नहीं आती थी मजलिस का नेता बना. सिवाय अपने बाप का बेटा होने के उस में कोई विशेषता नहीं थी. देश में चलते वंशवाद के कारण ही वह नेता बन सका. 1971 के मध्यावधि चुनाव में मजलिस और कांग्रेस का गठबंधन हुआ जिस में मजलिस को और ताकत मिली.

फिर 1975–77 का आपत्काल जिस में मजलिस ने सरकार का साथ दिया जब कि जमाअते इस्लामी के लोग जेलों में सड़ रहे थे. 1977 के चुनाव में मुसलमान नौजवानों के एक हिस्से ने जनता दल का खुल कर समर्थन किया हालांकि उन पर मजलिस के गुंडों द्वारा हमले किये गये. लगभग 10 प्रतिशत मुस्लिम मतदाताओं ने जनता को वोट दिया. यह वोट बनाने में लोहिया विचार मंच के कार्यकर्ताओं का मुख्य काम था. यह आशा जगने लगी कि इन नौजवानों के आने से पुराने शहर की राजनीति में परिवर्तन होगा क्योंकि दस प्रतिशत वोट लेना कोई मजाक नहीं था, मजलिस की पकड़ इतनी मजबूत थी. इसी दौर में दो और घटनाएँ घटीं जिन को ले कर बड़े आंदोलन हुए जिन से हिंदू मुस्लिम संबंध मजबूत हुए.

रमीजा बी नाम की स्त्री के पति की हत्या कर के पुलिस जवानों ने रमीजा से बलात्कार किया. चंद घंटों के अंदर आंदोलन हैदराबाद से शुरू हो कर पूरे आंध्रप्रदेश में फैल गया. हैदराबाद, विजयवाड़ा, वरंगल, विशाखापट्टनम, हर नगर में बंद हुआ, पुलिस की गोली चली, लोग मरे, हजारों जेल गये. रक्त का नया बंधन हिंदू मुस्लिम के बीच बना, हालांकि उस समय भी मजलिस, रा. स्व. से. सं. और मुख्यमंत्री चेन्ना रेड्डी ने इस को सांप्रदायिक झगड़ा बनाने की चेष्टा की. लेकिन आम लोगों ने इस प्रयत्न को दबा दिया. वे पुराने शहर के सुनहरे दिन थे. चंद महीने बाद शकीला बी नाम की एक लड़की से बलात्कार और हत्या की घटना मोनगीर नाम के कस्बे में पुलिस द्वारा हुई. दुबारा आंदोलन हुआ, दुबारा पुलिस ने गोली चलायी. हिंदू नौजवानों ने मर कर इन लाचार मुस्लिम लड़कियों से अपनी सहानुभूति का प्रमाण दिया. इस से बढ़कर और क्या त्याग हो सकता था. लेकिन

हवेलियाँ सूनी हो गयीं, महफिलें खत्म हो गयीं, नौकर चाकर बेरोजगार हो कर दर दर की ठोकरें खाने लगे. पुराने शहर का पतन शुरू हो गया, नया शहर बनने लगा. मद्रास, बंबई से अफसर लोग आने लगे जिन की यहाँ के लोगों में कोई दिलचस्पी नहीं थी. वे नदी के उस पार नयी बस्तियाँ बनाने लगे. पुराने शहर की घुटन, गरीबी और बर्बादी का दौर आरंभ हुआ जो अभी तक चल रहा है.

यह बंधन चुनाव के समय टूट गया. 1980 में जनता टूटी. सरकार गिरी. आंध्रप्रदेश में रा. स्व. से. सं. ने जनता पर कब्जा कर लिया क्योंकि समाजवादी और दूसरे लोकदल में शरीक हो गये. बचे खुचे संघ का मुकाबला नहीं कर सकते थे. मध्यावधि चुनाव में पुराने शहर से संघ के एक आदमी नरेंद्र को जनता टिकट मिला. उधर लोकदल की राज्य शाखा ने चरण सिंह की मर्जी के विरुद्ध मजलिस के समर्थन का फैसला किया. मगर लोकदल के समाजवादी कार्यकर्ताओं ने मजलिस का काम करने से इनकार कर दिया और अधिकांश मेदक चले गये जहाँ लोकदल और इंदिरा गांधी में टक्कर थी. तीसरा प्रतिस्पर्धी पुराने शहर में कांग्रेसी था. पुराने शहर की सीट को जीतने के लिए जनता के संघी उम्मीदवार ने एड़ी चोटी का जोर लगाया, मजलिस ने भी. लेकिन दोनों हारे, कांग्रेस जीती. चुनाव से कुछ पहले तीन बड़े दंगे हो चुके थे जिन में दो संघ ने और एक मजलिस ने शुरू किये. यह चुनाव की तैयारी थी. अब चुनाव के समय दोनों ने मिलकर बहुत बड़ा दंगा कराया जिस में कई लोग मरे. लोहिया विचार मंच के कार्यकर्त्ताओं ने अपनी जान जोखिम में डाल कर हुसैनी आलम क्षेत्र के मुसलमानों की जानें बचाने की कोशिश की. इस काम में मुख्य तौर पर इस लेखक, गोपाल सिंह और सांवर लाल ने भाग लिया. इस से पहले भी मंच ने आम सभाओं, गोष्ठियों और पोस्टर पर्चों के माध्यम से दोनों संप्रदायों में सद्भावना फैलाने के प्रयत्न किये थे. दोनों को सामाजिक सुधार करने के लिए कहा गया था. एक सभा में किशन पटनायक, राम इकबाल और इस लेखक ने मुस्लिम समाज में औरतों की हालत और हिंदू समाज के जातपात की आलोचना की. ऐसे तीखे भाषण पुराने शहर में कभी नहीं सुने गये थे. पुणे से मुस्लिम सत्यशोधक मंडल के सैयद भाई को बुलाया गया. उन के भी भाषण हुए. लेकिन संघ और मजलिस भयंकर दंगे कराने में कामयाब रहे. इस काम में उन को कांग्रेस और पुलिस का समर्थन मिला. मंच के लोग असरदार काम नहीं कर सके—चाहे इस को उन का निकम्मापन कहें या समय का तकाजा. फिर भी उन का काम चलता रहा—चाहे कितना ही बेअसर क्यों न हो. रा. स्व. से. सं. के पैर जम चुके थे.

जून 1981 में मुख्यमंत्री अंजैय्या ने हैदराबाद नगर निगम के चुनाव कराने का निश्चय किया. साथ ही अखबारों में खबरें छपीं कि कांग्रेस मजलिस गठबंधन होने वाला है. यह भी खबरें छपीं कि भाजपा सभी सीटों पर चुनाव लड़ेगी. इस बीच भाजपा के स्थानीय नेता अंजैय्या के क्षेत्र से अपने प्रत्याशी को हटा कर काफी बदनाम हो गये थे. अंजैय्या के निर्विरोध जीतने में लोकदल और जनता के नेताओं का भी हाथ था. सभी बिके हुए लोग थे. विश्व तेलुगू सम्मेलन का विरोध करने भी सब गये थे. मकालू घटना को ले कर विधानसभा में कांग्रेस सरकार के प्रस्ताव का समर्थन कर चुके थे. फिर भी भाजपा के नेता ही ज्यादा बदनाम हुए थे. यह कलंक कैसे मिटे?

दूसरी तरफ कमरतोड़ महँगाई, मुसलमानों में बढ़ती हुई बेरोजगारी को अनदेखा कर के उवेसी ने कांग्रेस से जो गठबंधन करना चाहा था इस से पुराने शहर के मुसलमान नाराज थे. उवेसी को मुसलमानों को फिर अपने साथ करना था. टूटती हुई साख को बनाना था.

संघ और मजलिस को अपने पाप धोने के लिए पानी नहीं, खून की आवश्यकता थी. तभी पिछले महीने खून बहा. सरकार के आंकड़े बताते हैं—25 दंगे में मरे, 2 पुलिस की गोली से मरे, 300 घायल—

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गैर सरकारी आंकड़े हैं—50 दंगे में मारे गये (16 जुलाई तक) 500 घायल.

इस दंगे की विशेषता है कि आम लोगों ने कोई हिस्सा नहीं लिया—केवल संघ और मजलिस के कार्यकर्त्ता, गुंडे और कांग्रेस के दलाल पुराने शहर की तंग गलियों में छिपे थे. अनजान मर्दों, औरतों और बच्चों की हत्या हो रही थी—महज इस बात को ले कर कि बोनाल के धार्मिक जुलूस में हिस्सा लेने वालों ने मस्जिद के सामने बाजा क्यों बजाया. बोनाल तेलंगाना के हरिजनों और पिछड़ों का विशेष त्योहार है. वैसे अब द्रविड़ भी इस में भाग लेने लगे हैं. तेलंगाना के बाहर आंध्र के किसी अन्य क्षेत्र में यह त्योहार नहीं मनाया जाता. यह एक किस्म की काली पूजा है जिस में बीस साल पहले सैकड़ों सांड और भेड़-बकरियाँ काटी जाती थीं. लेकिन आर्य समाज के असर से यह अब बहुत कम हो रहा है. वैसे ज्यादा लोग अब इस त्योहार में भाग नहीं

पुराने शहर में अब मजलिस और संघ का वर्चस्व है. साम्यवादी निष्क्रिय हैं. लोहिया विचार मंच के लोग अकेले पड़ गये हैं. मंच की बात हिंदू-मुसलमान दोनों सुनने को तैयार नहीं, ऐसा मालूम पड़ता है. फिर भी मंच के लोगों ने कर्फ्यू हटते ही घर घर जा कर लोगों से संपर्क करने का नया कार्यक्रम बनाया है. सभाओं और पोस्टरों का असर नहीं हो रहा है इसीलिए यह नया कार्यक्रम बनाया जा रहा है. इस कार्यक्रम के चलते लोहिया विचार मंच के लोगों को काफी परेशानी उठानी पड़ सकती है. इससे कमजोर मंच और ताकतवर संघ एवं मजलिस की मुठभेड़ें हो सकती हैं.

ले रहे हैं. पहले केवल औरतें मंदिर में जाती थीं. अब मर्द भी जाते हैं. खाना पीना भी बड़े पैमाने पर चलता है.

हुसैनी आलम क्षेत्र में एक बोनाल जुलूसियों और मस्जिद के मुसलमानों के बीच संघर्ष हुआ. पाँच को छुरे मारे गये. लेकिन कोई मरा नहीं. विचित्र बात यह थी कि पुलिस ने किसी को पकड़ा नहीं. कैसे पकड़ती, कांग्रेस भी तो दंगे भड़काना चाहती थी. उस के एक सप्ताह बाद बोनाल का एक बड़ा जुलूस हुसैनी आलम से निकल कर गोलकुंडा के प्राचीन मंदिर की तरफ चला. लगभग एक हजार लोग साथ थे. पहले हुई घटना का बदला लेने के इरादे से. दो बटालियन पुलिस भी साथ थी. 6 किलोमीटर के रास्ते में सात मस्जिदें. हर मस्जिद के सामने अमन कमेटी के लोग. एक मस्जिद के पास जुलूस रुका, किसी मुसलमान ने कहा, चलते क्यों नहीं, बाजा बंद करो—बस शुरू हो गया दंगा. लेकिन इन घटनाओं में आम लोग हिस्सा नहीं ले रहे थे. क्या इस को दंगा कहा जा सकता है? पुराने शहर के लगभग दस लाख लोगों में केवल दो हजार लोग दंगों में हिस्सा ले रहे थे. वैसे आम लोगों में भी चिढ़ और झुंझलाहट है—हिंदू और मुसलमान दोनों में. लोग आतंकित हैं, भूखों मर रहे हैं कर्फ्यू के कारण, लेकिन हत्या के बाद नफरत के चक्रव्यूह में फँसते जा रहे हैं.

पुराने शहर में अब मजलिस और संघ का वर्चस्व है. साम्यवादी निष्क्रिय हैं. लोहिया विचार मंच के लोग अकेले पड़ गये हैं. मंच की बात हिंदू-मुसलमान दोनों सुनने को तैयार नहीं, ऐसा मालूम पड़ता है. फिर भी मंच के लोगों ने कर्फ्यू हटते ही घर घर जा कर लोगों से संपर्क करने का नया कार्यक्रम बनाया है. सभाओं और पोस्टरों का असर नहीं हो रहा है इसीलिए यह नया कार्यक्रम बनाया जा रहा है. इस कार्यक्रम के चलते लोहिया विचार मंच के लोगों को काफी परेशानी उठानी पड़ सकती है. इस से कमजोर मंच और ताकतवर संघ एवं मजलिस की मुठभेड़ें हो सकती हैं. जनता दल के समाजवादी कार्यकर्त्ता और नये शहर से विधायक एन. नरसिम्हा रेड्डी ने भी इस आंदोलन में भाग लेने का फैसला किया हैं. पुराने शहर से निकल कर अब की बार हत्या चक्र नये शहर में पहुँच गया है और रेड्डी के क्षेत्र मुशीराबाद में दो लोग मारे गये हैं. यह भाजपा का कारनामा है.

भाजपा और मजलिस के लोग लाशें गिन रहे हैं—किस के कितने मरे. मंच के लोग मनुष्य जीवन को असली चीज कह रहे हैं. देखना है मौत और जीवन के इन प्रतिनिधियों में कौन जीतेगा. अभी तो मौत वाले आगे हैं. काफी आगे.

'सहानुभूति नहीं समान अधिकार चाहिए'
विकलांग क्षेत्र का मतलब दुनिया भर में बदल रहा है
विभिन्न स्रोतों से तैयार की गयी रपट: विनोद भारद्वाज

चरचे और चरखे

क्या हिंदू क्या मुसलमान !

इस 31 जुलाई को लाल किले के मैदान की तरफ़ कुछ ग्रामीण दिखायी दिये. उन की संख्या साठ-सत्तर के करीब होगी. ये लोग उसी दिन सुबह हरिजन से मुसलमान बने थे. पास जाकर एक से पूछा—

'सुना है आप लोग. . .'

'हम नहीं जानते.'

'आखिर क्यों मुसलमान बन गये?'

उन में से एक युवा सामने आ गया. हरियाणा की बोली में बोला, 'हो गये तो? आदमी हो गये हम. बेइज्जती खत्म अब. गाँव में एक लड़के को कुयें से पानी लेने पर मारा. बहुत मारा. अधमरा कर दिया ठाकुरों ने. अस्पताल ले गये. साथ गया कोई? बस मुल्ला जी गये. हर मुसीबत में साथ दिया. देते हैं, देंगे. भरोसा है उन पर. बेइज्जत नहीं करते. दुत्कारते नहीं. अपने लोटा में पानी पिलाते हैं. अपने साथ खिलाते हैं. बराबरी रखते हैं. छोटा बड़ा नहीं समझते. बहुत दुख सहा हमने. बहुत जूता लात खाया. आग लगाया आग घर में. कई बार. अलग हैं गाँव से हम. फिर भी चैन नहीं लेने देते. . .'

'चुप कर चुप कर:' एक सयाने ने समझाया. पर वह बोलता गया.

'पाप कट गये अपने. तर गये हम. अलग राम से इलाबख्श हो गये. नमाज पढ़ेंगे अब बस. सब के साथ ईद को. बराबरी से रहेंगे. आदमी की तरह. जानवर से भी बदतर थे हम. कर दिया था. बहुत जुल्म सहा अब तक."

उस को चुप कराता हुआ सयाना बोला.'—

'हम क्या हो गये. यह नहीं जानते साहब.. बस इतना जानते हैं कि जो हो गये हैं उस से हर वक्त की बेइज्जती से पीछा छूट गया. कुत्ते के मुँह पर भी बार बार थूको तो वह आपको चाटेगा नहीं. आखिर हाथ, पैर, नाक, कान मुँह वही है. अपना कुछ बदला नहीं. बस भगवान बदल गया—खुदा हो गया. उस के दरबार में ऊँच नीच नहीं. सो साहब उसी की इबादत करेंगे. बड़ा भाईचारा है यहाँ. यहाँ सब गले लगाते हैं. कीचड़ से निकल आये साहब कीचड़ से. गरीब हैं, गरीब रहेंगे पर इज्जत से रहेंगे. दुख-सुख में साथ देने वाले, माया ममता वाले, अपना समझने वाले अब मिल गये. हम तो यही चाहते थे—हिंदू मुसलमान से हमें क्या मतलब? खुदा के घर में अब जाने को मिल गया. वरना ठोकरें खाते थे. उस के दरबार में भी पहुँच नहीं थी. अब समझिए उस के दरबार में पहुँच हो गयी बस. क्या हिंदू क्या मुसलमान!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

अध्यादेश

महत्व पहले क़दम का है

दाम न बढ़ीं मज़दूरी घट

27 जुलाई को केंद्रीय सरकार ने अध्यादेश जारी कर के इस प्रकार के अधिकार प्राप्त किये हैं जिस प्रकार के अधिकारों की जरूरत अब तक केवल आपात स्थिति या युद्ध की अवस्था में ही महसूस की जाती थी. अध्यादेश के अनुसार अनिवार्य सेवाओं में काम करने वाले कर्मचारियों को हड़ताल या इसी प्रकार की कार्रवाई करने पर अनुशासनात्मक कार्रवाई का शिकार होना पड़ेगा, जिस में नौकरी से निकाले जाने के अतिरिक्त जेल जाने की भी व्यवस्था है. अनिवार्य सेवा अध्यादेश, 1981 वास्तव में असम में जारी किये गये एक ऐसे ही अध्यादेश के आधार पर बनाया गया है. ऐसा लगता है कि केंद्रीय सरकार ने असम में इस प्रकार की कार्रवाई को प्रयोग के रूप में किया था ताकि इसे बाद में राष्ट्रीय स्तर पर भी किया जा सके. केवल इस अध्यादेश में हड़ताल और उत्पादन में रुकावट डालने वाली दूसरी कार्रवाईयों के लिए सख्त सजा और तुरंत कार्रवाई की व्यवस्था ही नहीं है बल्कि सरकार ने अपने आप को यह भी अधिकार दिया है कि वह किसी भी सेवा या उद्योग को अनिवार्य घोषित करे.

अध्यादेश में जिन सेवाओं को अनिवार्य बताया गया है उन में रेलवे, डाक व तार, टेलीफोन, बंदरगाह, हवाई अड्डे, बैंक, पेट्रोल और उस के उत्पादनों से संबंधित सेवाएँ, अस्पताल और स्वास्थ्य सेवाएँ, और ऐसी सभी सेवाएँ जिन का संबंध संसद की कार्रवाई या प्रतिरक्षा विभाग से हो. इन अनिवार्य सेवाओं के सिलसिले में यह बात स्पष्ट कर दी गयी है कि इन में सभी वर्ग के कर्मचारी शामिल हैं जो व्याख्या के अनुसार उस उद्योग या सेवा से किसी भी तरह संबंधित हों. दूसरे शब्दों में रेलवे विभाग में स्टेशनों पर काम करने वाले कुली और हवाई अड्डे पर सफाई करने वाले कर्मचारी भी इस अध्यादेश के प्रभाव में आते हैं.

सेवाओं के अतिरिक्त उद्योगों की भी एक सूची तैयार की गयी है, जिस में 40 से अधिक उद्योग शामिल हैं. हवाई जहाज, शस्त्र और संबंधित सामान, कोयला और कोयले से बनने वाले उत्पादन, लोहा और इस्पात, मशीनें और वैज्ञानिक उपकरण, मोटर और हवाई जहाज का तेल, मिट्टी का तेल और कृत्रिम तेल, बिजली और समुद्री जहाज, चीनी और टेलीफोन, कपड़ा जिस में सूती, ऊनी, रेशमी, पटसन और कृत्रिम रेशे सभी शामिल हैं, मोटर गाड़ियाँ और ट्रैक्टर, सीमेंट और उर्वरक, बिजली के उपकरण जैसे पंप, मोटर और पंखे. उद्योगों में इस्तेमाल होने वाले विभिन्न उपकरणों की उत्पादन इकाइयाँ जैसे रोलर, बॉयलर, मशीनी औजार, बिजली उत्पादन के उपकरण आदि, विभिन्न प्रकार के धातुओं, न्यूज प्रिंट, वोर्ड, दवाइयां, रसायनिक पदार्थ, रबड़, चमड़ा, गोंद, वनस्पति तेल, कृषि उपकरण, रेडियो, सिलाई की मशीनें, शीशा, रंग और साबुन प्लाई वुड आदि ऐसे उद्योग हैं जिन्हें इस अध्यादेश के प्रभाव में लाया गया है.

अध्यादेश ने सरकार को यह अधिकार दिया है कि वह किसी भी अन्य उद्योग को अनिवार्य घोषित करे. यह अध्यादेश छह महीने तक चालू रहेगा और उस के पश्चात यदि जरूरत पड़ी तो उस की अवधि और छह महीने बढ़ायी जा सकती है. संसद के आगामी अधिवेशन में एक विधेयक प्रस्तुत किया जायेगा जिस में एक कानून पारित कर के अध्यादेश को विधिवत तीन वर्ष तक प्रभावी बनाने की व्यवस्था भी होगी.

अध्यादेश जारी करने के कुछ दिन बाद केंद्रीय सरकार ने यह घोषित किया कि इस अध्यादेश को संशोधित कर के मजदूरों को काम से हटाने और तालाबंदी पर भी प्रतिबंध लगाया जायेगा. गृह मंत्रालय द्वारा प्रसारित एक विज्ञप्ति में यह बताया गया है कि प्रस्तावित संशोधन संसद में विधेयक प्रस्तुत करते समय किये जायेंगे. वास्तव में इस प्रकार का संकेत प्रधानमंत्री श्रीमती गांधी ने स्वयं ही दिया था जब कि दिल्ली विद्युत प्रदाय विभाग के कर्मचारियों का एक समूह अध्यादेश के समर्थन में उन से मिलने गया. कर्मचारियों ने यह शिकायत की थी कि मजदूरों से अधिक मालिकों को अनुशासित करने की जरूरत है. इसलिए इस प्रकार के संशोधनों की योजना बनायी गयी. स्वाभाविक है कि इस संशोधन से मालिकों पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा. क्योंकि तालाबंदी जैसी कार्रवाइयाँ प्रायः हड़तालों की धमकी के फलस्वरूप ही की जाती है.

दिनमान
समाचार साप्ताहिक
राष्ट्र की भाषा में राष्ट्र का आह्वान
भाग 17 9–15 अगस्त, 1981
अंक 32 18–24 सावन, 1903

इस अंक में

मत और सम्मत 4/ पिछले सप्ताह 5/ पत्रकार संसद 7/ भाषा 8/ संवाद प्रतियोगिता 9/ हिंदू-मुसलमान 11/ चरचे और चरखे क्या हिंदू क्या मुसलमान 14/

राष्ट्रः 15–18/ अध्यादेशः अभी पहला कदम; केंद्र राज्यः यह कैसा पूर्वाभ्यास?

प्रदेशः 18–22/ कर्नाटकः इंका विधायक पर हमला; बिहार : सब एक जगह जुड़े तो; महाराष्ट्रः सरकार बनाम दत्ता सामंत.

रेल दुर्घटनाः खून से तर हरी झंडी 23–27/ रंगभेदः अपने आप भाग जाओ, वरना. . . 28–33/

समाचारभूमिः जिब्राल्टर 34/ विश्वः 35–38/ ईरानः नया राष्ट्रपति नेपालः पंचायत का रास्ता गांवियाः तीन दिन की क्रांति.

आँकड़ेः सबसे बड़ा लड़ाकू बनने की ललक 39/ खेल और खिलाड़ीः 40/ इतिहासः बेकारी की परंपरा 42/ पुरस्कारः कलाकार का सम्मान 44/ कलाः आधी दूरी से वापस 46/ रंगमंचः ध्रुवस्वामिनी 47/ फिल्मः धनी दुनिया का नर्क 48/ बालकृष्ण सम 49/ आज की कविता 50/

आवरणः बिलासपुर की रेलदुर्घटना.
चित्रः उमेश वर्मा.

संपादक
रघुवीरसहाय
संपादकीय सहकर्मी
जितेंद्र गुप्त (सहायक संपादक), सर्वेश्वरदयाल सक्सेना (मुख्य उपसंपादक), श्यामलाल शर्मा, योगराज थानी, जवाहरलाल कौल, शुक्ला [illegible], त्रिलोक दीप, महेश्वरदयालु गंगवार, प्रयाग शुक्ल, बनवारी, विनोद भारद्वाज, सुषमा पाराशर और नरेश कौशिक.
सज्जा : विजय कोहली
रामसेवक श्रीवास्तव (विशेष संवाददाता)

दिनमान
टाइम्स ऑफ इंडिया प्रकाशन
10 दरियागंज, नयी दिल्ली-110002

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

श्रीमती गांधी ने कहा है कि अनिवार्य सेवा अध्यादेश जारी करने पर उन्हें मजबूर होना पड़ा. मजबूरी क्या थी? एक तो शायद यह थी कि बहुत से उद्योगों और सार्वजनिक सेवा विभागों में काम के प्रति चिंताजनक लापरवाही पैदा हो गयी थी. छोटी छोटी बातों पर हड़ताल और काम रोकने की कार्रवाइयां होने लगी थीं. इस सिलसिले में बैंक सेवाओं का हवाला दिया गया. रिजर्व बैंक ऑफ इंडिया के तीसरे और चौथे दर्जे के कर्मचारियों की हड़ताल और उस के परिणामस्वरूप करीब 150 कर्मचारियों का नौकरी से बर्खास्त होना अपेक्षाकृत अधिक प्रचारित घटना है. मगर जिस घटना की ओर कम लोगों का ध्यान गया वह थी पुरानी दिल्ली क्लियरिंग कार्यालय का 15 दिन तक बंद रहना. दिल्ली के बैंकों में जमा हजारों चेक दो सप्ताहों तक भुगतान के लिए पारित नहीं हो सके. जिस से जनसाधारण और व्यापारियों को काफी मुसीबत का सामना करना पड़ा था.

मामला बहुत मामूली था. इतना कि आम खाताधारी यह कल्पना भी नहीं कर सकता था कि ऐसी बात पर भी बैंक बंद हो सकते हैं. क्लियरिंग कार्यालय में प्रत्येक बैंक के प्रतिनिधि जमा चेक ले कर आते हैं और वहां उन का किताबी विनिमय होता है. युनाइटेड कमर्शियल बैंक का एक प्रतिनिधि जब एक दिन वहाँ पहुँचा तो उस से दावत तलब की गयी क्यों कि वह 'नया आदमी' था. वहाँ का यह अलिखित दस्तूर है जिसे प्रतिनिधि आम तौर पर मान लेते हैं. मगर यह पैसा कहाँ से आता है यह तो शायद सब लोग नहीं जानते. नये प्रतिनिधि ने इस तर्क पर दावत देने से इनकार किया कि उस के पास पैसे नहीं हैं और उस का बैंक इस काम के लिए पैसे नहीं देता. बस इसी बात पर उस प्रतिनिधि का बहिष्कार हुआ. विवाद बढ़ गया, काम भी ठप्प हो गया और दो सप्ताह तक ठप्प पड़ा रहा.

दूसरी मजबूरी उद्योगों में बढ़ती हुई हिंसा बताया गया. इस के कारण मजदूर संगठन मजदूरों के हितों की रक्षा करने के बदले किसी न किसी ताकतवर गुट के स्वार्थों की सुरक्षा के लिए ही बल और जबर्दस्ती का सहारा लेते हैं. इन दोनों कारणों से उत्पादन और कुशलता का ह्रास हो रहा है.

दोनों कारणों के पीछे तथ्य तो जरूरी हैं और इस के समर्थन में बहुत सी घटनाएं प्रस्तुत की जा सकती हैं. मगर सवाल यह है कि क्या इस प्रकार की स्थिति अचानक पैदा हो गयी? यदि नहीं तो इसे रोकने के लिए सरकार ने अब तक कौन से कदम उठाये हैं? पिछले एक वर्ष के कार्यकाल पर नजर डालने से तो नहीं लगता है कि केंद्रीय सरकार ने न अपने विभागों में और न ही सरकारी एवं गैर सरकारी उद्योगों में कथित अनुशासन लाने की किसी कार्रवाई में रुचि दिखायी है. पुरानी दिल्ली क्लियरिंग कार्यालय का 15 दिन तक बंद पड़ा रहना इस बात का प्रमाण है कि ठीक नाक के नीचे घोर अनुशासनहीनता की कार्रवाई के बावजूद केंद्रीय सरकार या वित्त मंत्रालय हाथ पर हाथ धरे बैठा रहा.

जिन कारणों की ओर सरकारी प्रचारतंत्र ने इशारा नहीं किया है उन में सार्वजनिक उद्योगों में मजदूर संगठनों और सरकार के बीच बढ़ते हुए विवाद से पैदा होने वाली कटुता भी एक है. बंगलूर में सार्वजनिक उद्योगों के मजदूर प्रतिनिधियों के साथ लंबी बातचीत के बावजूद कोई फैसला नहीं हो पाया. वास्तव में 1982 में कई सार्वजनिक उद्योगों में सरकार और मजदूर संगठनों के बीच मजदूरी संबंधी समझौतों की अवधि समाप्त हो रही है. स्वाभाविक है कि मजदूर इस की समाप्ति पर या उस से पहले नये समझौतों की मांग करें. गिरते हुए उत्पादन और बढ़ती हुई महँगाई के दो पाटों में फँसी हुई सरकार इस प्रकार की स्थिति से बचने का कोई रास्ता ढूँढ़ना चाहती है. इस लिए मजदूर नेता यह मानते हैं कि मजदूरों को उचित वेतनवृद्धि और अतिरिक्त सुविधाओं से वंचित रखने के लिए हड़तालों और प्रबंध विरोधी प्रदर्शनों पर प्रतिबंध लगाने का सख्त कदम उठाया गया है.

यूँ तो सरकार लगातार यह दावा करती रही है कि देश में पिछले डेढ़ वर्ष से उत्पादन बढ़ा है और औद्योगिक शांति पैदा हो गयी है. किसी हद तक दूसरी बात में सच्चाई भी है. इस समय देश में मजदूर और मालिक संबंधों में अपेक्षाकृत कम कटुता है और विभिन्न उद्योगों में सत्तारूढ़ दल के हस्तक्षेप से मजदूर संगठनों में जो गंभीर दरारें पैदा कर दी गयी हैं उन के कारण मजदूर संगठनों की ताकत पिछले कई वर्षों की तुलना में बहुत कम हो गयी है. इस लिए सरकार को व्यापक पैमाने पर मजदूरों के विरोध का सामना इस समय नहीं करना पड़ रहा है. मगर जहाँ तक उत्पादन में वृद्धि का सवाल है वह केवल दिखावटी दाँतों के समान ही है. बेरोजगारी और महँगाई को रोकने के लिए केंद्रीय सरकार ने महत्त्वपूर्ण आर्थिक कदम उठाने के वायदे किये हैं. एक कदम तो बियरर बांड जारी कर के उठाया गया जिस से काले धन को सम्मान प्रदान करने की कोशिश की गयी मगर इन से भी उस मात्रा में काला धन बाहर नहीं आया जिस से औद्योगिक गतिविधि, मुद्रास्फीति या महँगाई पर महत्त्वपूर्ण असर पड़ता. श्रीमती इंदिरा गांधी और उन के सलाहकारों का यह विचार है कि अधिक उत्पादन से देश की आर्थिक स्थिति बदल जायेगी मगर इस तथ्य को बिल्कुल नजरअंदाज किया गया है कि विश्व में कई बार ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हो गयी हैं जब कि एक ओर संपन्नता रही है और उसी के साथ साथ आम लोगों में घोर निराशा तथा

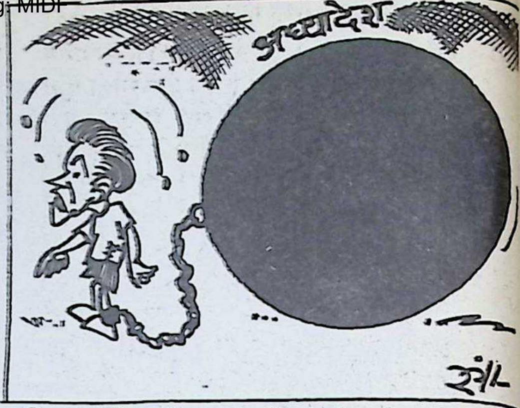

विपन्नता के सभी लक्षण मौजूद रहे. हाँ, यह बात सही है कि अधिक उत्पादन से दुनिया की नजर में और कुछ संपन्न तथा अधिकारयुक्त व्यक्तियों के लाभ के लिए सरकार पूरे अर्थतंत्र को अधिक से अधिक शोषण पर आधारित करने का खतरा भी ले सकती है. वर्तमान अध्यादेश इसी दिशा में एक कदम दिखायी देता है.

ताजा खबरों में यह बताया गया है कि विश्व बैंक ने भारत की आर्थिक प्रगति और कार्यकुशलता की काफ़ी तारीफ़ की है. जानकार सूत्रों के अनुसार भारत बड़े पैमाने पर विश्व बैंक से आर्थिक सहायता लेने की कोशिश कर रहा है. इस संदर्भ में विश्व बैंक की सराहना और उद्योगों में अनुशासन पैदा करने के सरकारी प्रयासों की प्रशंसा यह संदेह पैदा करती है कि सरकार इस वित्तीय संस्था और इसे जिंदा रखने वाले संपन्न पाश्चात्य देशों को इस बात का आश्वासन देने को उत्सुक रही है कि देश में औद्योगिक उत्पादकता का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए लोकतांत्रिक अधिकारों के संरक्षण के सिद्धांतों को आड़े नहीं आने दिया जायेगा. इस दृष्टि से यह अध्यादेश हिमशैल की तरह जितना ऊपर है उस से बहुत अधिक गहराई में छिपाये हुए है.

केंद्र-राज्य

यह कैसा पूर्वाभ्यास?

मगर इरादे नेक हैं

(हमारे विशेष संवाददाता द्वारा)

प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी के हाल के मध्यप्रदेश और कश्मीर के दौरे ने केंद्र-राज्य संबंधों को ले कर कुछ संवैधानिक विवाद पैदा किये हैं. मध्यप्रदेश का कांग्रेसी सरकार की बात और है. कश्मीर की गैर इंका सरकार के प्रतिनिधियों ने भी कोई राजनैतिक विरोध नहीं किया लेकिन उस के बावजूद प्रतिपक्षी दल बेचैनी का अनुभव कर रहे हैं. चूँकि प्रधानमंत्री के दौरे का उद्देश्य राज्यों के विकास संबंधी कार्यक्रमों की समीक्षा था अतः यह सवाल उठाया गया है कि क्या प्रधानमंत्री को ऐसा करने का संवैधानिक अधिकार है? इस नयी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कार्यशैली की जरूरत क्यों पड़ गयी? सत्ताधारी दल के प्रवक्ताओं का कहना है कि संविधान में यह कहीं नहीं लिखा है कि प्रधानमंत्री ऐसा नहीं कर सकतीं. प्रतिपक्षी दलों का तर्क दूसरा है. मध्यप्रदेश विधानसभा में प्रतिपक्ष के नेता सुंदर लाल पटवा (भाजपा) के अनुसार 'मुख्यमंत्री के कार्यालय में प्रधानमंत्री को उन की कुर्सी पर बैठने और एक मुख्य अध्यापिका के रूप में निरीक्षण करने की इजाजत संविधान में नहीं दी गयी है. एक राज्य सरकार मूलत: अपनी विधानसभा के प्रति उत्तरदायी होती है. प्रधानमंत्री और केंद्र सरकार उसे केवल उन्हीं विषयों में उत्तरदायी ठहरा सकती हैं जो केंद्रीय और समवर्ती सूची में रखे गये हैं.'

वास्तविकता यह है कि प्रतिपक्ष प्रधानमंत्री के हर कदम को संदेह की निगाह से देखता है अत: इस दौरे के उद्देश्यों को ले कर भी वह चौकन्ना हो गया है. उसे डर है कि विकास कार्यों के निरीक्षण की यह प्रक्रिया कहीं प्रधानमंत्री को गैरकांग्रेसी राज्य सरकारों को बर्खास्त करने के मसाले न उपलब्ध करा दें. कहीं यह धारा राष्ट्रपति शासन प्रणाली लागू किये जाने के कांग्रेस के एक पुराने इरादे का पूर्वाभ्यास न साबित हो जाये.

दिलचस्प तथ्य यह है कि शंका और असंतोष के बावजूद दिल्ली में आयोजित पत्रकार सम्मेलन में पश्चिम बंगाल के मुख्यमंत्री ज्योति बसु ने अपनी प्रतिक्रिया बहुत संतुलित ढंग से व्यक्त की और कहा यदि श्रीमती गांधी की यात्रा का उद्देश्य राज्यों की मदद करना है तो उस का स्वागत है. लेकिन अगर वह उस के जरिये राज्यों की स्वायत्तता को सीमित करना चाहती हैं तो हमें सावधान रहना होगा.

26 जुलाई को दोपहर के खाने के बाद: पट्टीदारों का सुलहनामा

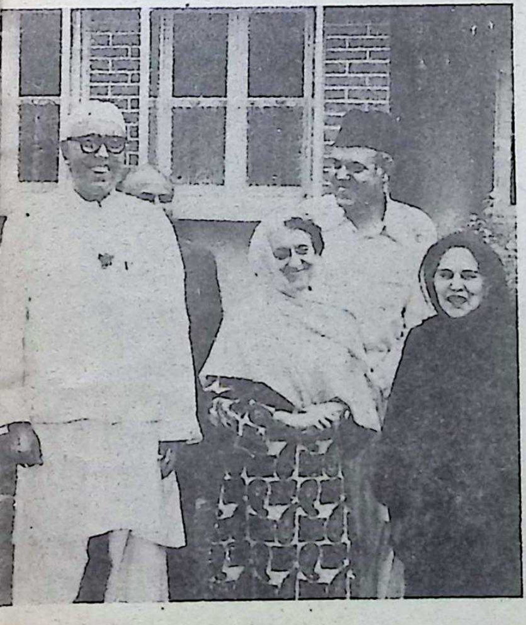

श्री बसु की संतुलित टिप्पणी से अलग उन के वित्त मंत्री अशोक मित्र की प्रतिक्रिया सब से तीखी रही है. उन्होंने कहा कि 'प्रादेशिक राजधानियों में जा कर सरकार के विभिन्न पहलुओं पर मंत्रियों और अधिकारियों से विचार विमर्श करना गलत है. क्योंकि संविधान ने उस की इजाजत नहीं दी है. राज्यों के संबंध में केंद्र के अधिकार केंद्रीय कानूनों और अधिशासी आदेशों के परिपालन की देखरेख तक सीमित हैं. अगर प्रधानमंत्री पश्चिम बंगाल और प्रशासन के बारे में कुछ भी जानना चाहती हैं तो राज्य सरकार उन्हें उस की विस्तृत जानकारी लिखित रूप में निश्चय ही देगी. लेकिन क्या वह राज्य सचिवालय में आ सकती हैं? क्या वह सामान्य मुद्दों पर बात करने के लिए अधिकारियों की बैठक कर सकती हैं?

प्रधानमंत्री की इस कार्यशैली ने मार्क्सवादियों को ही सर्वाधिक चौंकाया है. केरल और पश्चिम बंगाल दोनों ही राज्यों के उन के प्रतिनिधियों ने दो तरह के तर्क दिये हैं. एक तो यह कि अगर प्रधानमंत्री का इरादा प्रशासन में सुधार लाना या विकास कार्यक्रमों को गतिशील बनाना है तो उस की पूर्ति नहीं हुई है. प्रमाण के लिए उन की चंडीगढ़ की यात्रा के बावजूद पंजाब और हरयाणा दोनों लक्ष्य की पूर्ति में सफल नहीं हुआ है. बिहार में भ्रष्टाचार को रोकने के उन के स्पष्ट आदेशों के बावजूद स्थिति बेहतर नहीं हुई है. दूसरा तर्क यह है कि प्रधानमंत्री को ऐसा करने का अधिकार नहीं है और चूंकि अधिकार नहीं है इस लिए यह पूछा जा सकता है कि यदि पश्चिम बंगाल के नेता केंद्रीय शासन की समीक्षा करना चाहें तो क्या प्रधानमंत्री उस की अनुमति देंगी? जब उन की अपनी ही सरकार अक्षमता की जिंदा मिसाल है तो वह दूसरों पर उंगली कैसे उठा सकती हैं या उस में हस्तक्षेप कैसे कर सकती हैं?

लगता है कि मार्क्सवादी नेता ऐसी किसी परिस्थिति का सामना नहीं करना चाहते जिस में प्रधानमंत्री की समीक्षा के दौरान उन के प्रादेशिक कर्णधार अपनी ही सरकार के अधिकारियों की नजर में अक्षम साबित हों. इसी लिए वे कहते हैं कि शासन चलाने के लिए उन का चुनाव जनता ने किया और जनता ही उन्हें हटा भी सकती है. प्रधानमंत्री को उन के कार्यों का मूल्यांकन करने की जरूरत नहीं है. खास तौर से इस लिए भी कि हर महीने मुख्यमंत्री और उन की सरकार के वरिष्ठ अधिकारी इस सिलसिले में दिल्ली जाते रहते हैं. प्रधानमंत्री के इस तरह के दौरे का एक नुकसान यह भी होगा कि मुख्यमंत्री का दबदबा अपने ही अधिकारियों पर नहीं रह पायेगा. उन की निगाह दिल्ली पर टिकने की कोशिश करेगी. परिणाम यह होगा कि धीरे धीरे उन की हैसियत राज्यों के एक प्रतीकात्मक मुखिया में सिमट जायेगी और वह महज शोभा की एक वस्तु हो कर रह जायेंगे.

वैसे, इस तरह के विरोध की आशंका कश्मीर से भी की गयी थी खास तौर से इंदिरा कांग्रेस और नेशनल कांफ्रेंस के रिश्तों के अच्छा न होने के संदर्भ में. अप्रैल 81 में श्रीनगर में दिये गये श्रीमती गांधी के वक्तव्य और बाद में जनसभाओं में शेख अब्दुल्लाह द्वारा व्यक्त की गयी आशंकाओं को ध्यान में रखते हुए विरोध अस्वाभाविक नहीं होता. लेकिन राजीव गांधी के श्रीनगर जाने और अपने दल के कार्यकर्त्ताओं को संघर्ष की राजनीति चलाने की जगह पर संगठन को निचले स्तर से मजबूत बनाने की सलाह देने के बाद परिस्थिति में थोड़ा सा गुणात्मक अंतर आ गया. प्रधानमंत्री ने भी श्रीनगर पहुँचने पर तत्काल यह स्पष्ट कर दिया कि उन की यात्रा का उद्देश्य राज्य सरकार का छिद्रान्वेषण करना नहीं है.

पाकिस्तान के संदर्भ में राजनैतिक परिस्थितियों को देखते हुए यदि नेशनल कांफ्रेंस के रिश्तों में सुधार राष्ट्रीय हित के विस्तार में सहायक है तो उस दिशा में क्रियाशील होने की श्रीमती गांधी की कोशिश उन की राजनैतिक दूरदर्शिता का ही परिचायक है. श्रीनगर में विकास कार्यों की प्रधानमंत्री द्वारा समीक्षा के दौरान यदि नेशनल कांफ्रेंस ने किसी भी तरह का असंतोष व्यक्त नहीं किया तो उस का अर्थ यही था कि रिश्तों के सुधार में दिलचस्पी शेख साहब में भी कम नहीं है.

प्रधानमंत्री ने अपने किसी वक्तव्य में यह कहा था कि वह गैर कांग्रेसी राज्यों में भी जायेंगी. पश्चिम बंगाल भी उस सूची में रहा है. गैर कांग्रेसी राज्य सरकारों की आशंका की बात अलग है. इतना स्पष्ट है कि कांग्रेसी राज्य सरकारों वाले राज्य में उन की समीक्षा शैली का असर जरूर पड़ेगा. अपनी भोपाल यात्रा के दौरान कर्मचारियों को संबोधित करते हुए श्रीमती गांधी ने राज्य प्रशासन और संगठन दोनों पर लगाये जाने वाले भ्रष्टाचार के आरोप पर चिंता व्यक्त की थी. उस का परिणाम यह हुआ कि मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह अचानक सरकारी प्रेस में पहुँचे और खरीद संबंधी कुछ दस्तावेजों को अपने कब्जे में ले लिया. वह राजस्व विभाग में भी गये और कृषि निदेशालय में भी और अपने कदम द्वारा यह आभास देने की कोशिश की कि वह भ्रष्टाचार मिटाने के लिए कृतसंकल्प हैं. विकास कार्यों की समीक्षा के सिलसिले में श्रीमती गांधी ने मंत्रियों और अधिकारियों से जिस तरह की बात की उस से हल्का सा अंदाजा यह भी लगा कि उ न की दिलचस्पी काम पूरा होने में है. बहानेबाजी की कोई गुंजाइश नहीं है.

बैठक में उन के साथ केंद्रीय वित्त राज्य-

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मंत्री सवाई सिंह सिसोदिया के अलावा मंत्रिमंडल सचिव श्री कृष्ण राव साहब ऊर्जा सचिव श्री कपूर प्रधानमंत्री के अपने सचिवालय के संयुक्त सचिव और कई अन्य विभागों यथा सिंचाई और वित्त मंत्रालय के सचिव आदि भी थे. राज्य की तरफ से मुख्यमंत्री के अलावा उपमुख्यमंत्री, कृषिमंत्री, मुख्य सचिव और तीस विभागों के प्रमुख उपस्थित थे. बैठक में विद्युत उत्पादन से ले कर अतिरिक्त सिंचाई सुविधाओं, कानून व्यवस्था, छठवें आयोजन 25 सूत्री कार्यक्रम आदि अनेक विषयों पर बातचीत हुई. राज्य सरकार के अधिकारी जवाब देने के लिए पूरी तौर पर तैयार थे. प्रत्येक अधिकारी ने अपने विभाग के विषय में लिखित ब्यौरा तैयार किया था. उसे उस ने पढ़ा. जहां कहीं जरूरत हुई प्रधानमंत्री ने न केवल सुझाव दिया बल्कि यह भी कहा कि मौके पर फैसला किया जाना चाहिए.

मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह ने प्रधानमंत्री की यात्रा राज्य के लिए अपने नेता की अनुकंपा मानी. उन्होंने कहा कि श्रीमती गांधी का निर्देश राज्य की समस्याओं के समाधान में सहायक होगा.

प्रशासन में चुस्ती लाने और निर्धारित लक्ष्यों को पूरा होते देखने की श्रीमती गांधी की चिंता स्वाभाविक है. खास तौर पर वैसी स्थिति में तो और भी जब अनेक राज्य सरकारों पर अक्षमता के आरोप प्रतिपक्षी दलों द्वारा ही बार बार लगाये गये हों. ध्यान देने की बात है कि भोपाल की यात्रा पहली यात्रा नहीं थी. इस वर्ष के प्रारंभ में ही राज्य स्तर पर इस तरह की बैठकें करने का फैसला किया गया था. प्रधान सचिव श्री अलेक्जेंडर और कुछ वरिष्ठ अधिकारियों ने बातचीत के बाद यह फैसला किया था कि केंद्र और राज्य सरकार के सचिवों के बीच भी वक्त वक्त पर विचार विमर्श होने चाहिए. समीक्षा समितियों की इस तरह की बैठक इस के पहले लखनऊ, पटना और चंडीगढ़ में हो चुकी है. प्रधानमंत्री का एक उद्देश्य यह भी था कि राज्य सरकार के कर्णधार यह महसूस करें कि उन का अस्तित्व भी अपने को लोकप्रिय नेता होने के साथ साथ अच्छा प्रशासक साबित करने पर निर्भर करता है.

प्रधानमंत्री की इस दिलचस्पी को महज राज्यों के सत्ताधिकार पर अतिक्रमण मानना और उसके पीछे राजनैतिक उद्देश्य ढूंढ़ना उनके प्रति नाइंसाफी होगी. स्वायत्तता और स्वेच्छाचारिता का फर्क समझना चाहिए. यदि उनकी यह नयी कार्यशैली प्रशासन को सुधारने और आयोजन कार्यक्रमों को गतिशील बनाने में सहायक होती है तो उसका स्वागत होना चाहिए. प्रश्न यह है कि यदि कोई राज्य सरकार अक्षम और कमजोर नहीं है तो उसे इस तरह की समीक्षा खतरनाक क्यों लग रही है?

प्रदेश

कर्नाटक

इंका विधायक पर हमला

विरोध को समाप्त करने की इंका शैली

जहरीली शराब पीने से हुई लगभग साढ़े तीन सौ मौतों का आतंक अभी खत्म भी नहीं हो पाया कि बेंगलूर में ही 23 जुलाई को एक हरिजन इंका विधायक आई. पी. डी. सालप्पा की उन के अपने ही दल के लोगों ने जम कर पिटाई कर डाली. एक अन्य इंका विधायक एम. रघुपति को लगातार धमकियाँ मिल रही हैं. उन्होंने विधानसभा अध्यक्ष से अनुरोध किया है कि वह उन की जान की सुरक्षा की व्यवस्था करें. राज्य इंका के भूतपूर्व अध्यक्ष बंगरप्पा को भी ऐसी ही धमकियाँ मिली हैं और उन्होंने श्रीमती गांधी को तार भेज कर संरक्षण की माँग की है. इन घटनाओं से न केवल सत्तारूढ़ इंका के एक वर्ग में आतंक फैल गया है बल्कि सत्ता गुट के विरोधियों के, चाहे वे सत्तारूढ़ दल के सदस्य हों या विपक्ष के, मन में यह धारणा घर कर गयी है कि जो सत्ता में हैं वे अपने विरोध को समाप्त करने के लिए किसी भी हद तक जा सकते हैं मामूली मारपीट से ले कर जान लेने तक. कर्नाटक के सभी दलों के 35 विधायकों ने तार भेज कर श्रीमती गांधी से इस स्थिति को समाप्त करने का अनुरोध किया है.

अभी चंद सप्ताह पहले बिहार में भी सत्ता-गुट के प्रति विरोधी तेवर वाले एक इंका विधायक को अपने ही दल के लोगों के हाथों पीटा गया था. (देखें **दिनमान 19-25 जुलाई**). विरोध पक्ष का मुंह बंद करने के लिए हिंसा का सहारा लेना सर्वत्र और सर्वथा निंदनीय है, कर्नाटक में यह इसलिए और भी कि इंका विधायक की पिटाई का कारण महज इतना भर है कि उस ने विषाक्त शराब कांड की जाँच केंद्रीय जाँच ब्यूरो से कराने की माँग की. उसे संदेह था कि राज्य सरकार द्वारा करायी जा रही जाँच से सारे तथ्य सामने नहीं आ पायेंगे क्योंकि कुछ बड़े और प्रभावशाली लोगों के संबंध शराब का नाजायज धंधा करने वालों से हैं. श्री सालप्पा की पिटाई से उन के संदेह की पुष्टि ही हुई. पीटने वालों ने अपनी पहचान को छिपाया नहीं—पीटने के साथ उन्होंने सांसद और मुख्यमंत्री के एक घनिष्ठ सहयोगी एफ.एम. खान के, जो स्वयं भी बेदाग नहीं हैं, समर्थन में नारे भी लगाये. पीटने वालों को युवा इंका से संबद्ध बताया जाता है.

कहना न होगा कि जून के मध्य में एक ट्रक ड्राइवर से झगड़े को ले कर शराब के नशे में धुत एफ.एम.खान ने पुलिस के उच्चाधिकारियों से भी जो कथित अभद्र व्यवहार किया उस से उन का नाम आतंक का पर्याय बनता सा जान पड़ रहा है. उस दिन (13 जून) उन्होंने एक ट्रक ड्राइवर मोहम्मद अली, गश्त पर निकले दो सिपाहियों और सहायक पुलिस आयुक्त अहमद अली से जो हाथापाई की और पुलिस आयुक्त निजामुद्दीन तथा उपायुक्त रामानुजम से जिस तरह का कथित अशिष्ट व्यवहार किया यदि वह सब का सब सच है (पुलिस के कतिपय गुमनाम अधिकारियों द्वारा इंडियन एक्सप्रेस के संवाददाता को बताये गये विवरण और कुछ पुलिस अधिकारियों के परस्पर विरोधी बयान देखते हुए वह झूठ भी नहीं लगता) तो यह मानना होगा कि सांसद खान का आचरण निपट सामंती आचरण को भी मात दे गया.

अब उन्हीं खान साहब का नाम श्री सालप्पा की पिटाई से जुड़ा पाया गया है. और यदि यह भी सच है तो यह संदेह पैदा होना स्वाभाविक ही है कि जिस आशंका को व्यक्त करते हुए श्री सालप्पा ने जहरीली शराब कांड की जाँच केंद्रीय जाँच ब्यूरो से कराने का अनुरोध प्रधानमंत्री से किया था वह सच है और इसीलिए कुछ प्रभावशाली लोग तिलमिला उठे हैं और अपने विरोधियों का सफाया करने पर आमादा हैं. यह स्थिति निश्चय ही आतंक पैदा करने वाली है. कानून और व्यवस्था की स्थिति तो पहले ही बहुत बिगड़ चुकी है, इस से तो राज्य में जंगल का कानून स्थापित होने की आशंका पैदा हो गयी है.

इस घटना से मुख्यमंत्री गुंडूराव की स्थिति और भी कमजोर हो गयी है. यों भी उन की एक साल की उपलब्धि कोई उत्साहवर्द्धक नहीं रही और इंका आला कमान उन के क्रियाकलापों से खुश नहीं है. उन के कई मंत्रिमंडलीय सहयोगियों पर भ्रष्टाचार तथा अन्य आपराधिक आरोप हैं. एक बेरोजगार युवक से 25 हजार रु. घूस लेने के आरोप में अभियुक्त होने के कारण एक स्त्री मंत्री को मंत्रिमंडल से त्यागपत्र देना पड़ा. योजना तथा वक्फ मंत्री चाँद मुहम्मद इब्राहीम के त्यागपत्र की माँग को ले कर विपक्ष एक अरसे से आंदोलन कर रहा था और अंततः 4 जुलाई को

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

उन्होंने मंत्रिमंडल से यह कहते हुए त्यागपत्र दे दिया कि अब वह अपने विरोधियों के आंदोलन से जूझ सकेंगे. श्री इब्राहिम का इस्तीफा स्वीकार कर लिया गया है और यह निश्चय ही विपक्ष की बहुत बड़ी जीत है. कहना न होगा कि श्री इब्राहिम को खान साहब का भरपूर समर्थन प्राप्त है और इसी नाते मुख्यमंत्री उन का बचाव करते रहे हैं (देखें **दिनमान** 5-11 जुलाई).

इस सारे घटनाचक्र का एक परिणाम यह सामने आया है कि केंद्र सरकार कर्नाटक में मध्यावधि चुनाव कराने की दिशा में विचार करने लगी है और ऐसी संभावना है कि आगामी वर्ष फरवरी में पश्चिम बंगाल, हरयाणा और हिमाचलप्रदेश में होने वाले विधानसभा चुनावों के साथ कर्नाटक और आंध्रप्रदेश में भी चुनाव कराये जायेंगे, हालाँकि निर्वाचन आयोग ने इस बारे में कोई कार्रवाई करने की खबर का खंडन किया है.

यह धारणा है कि कर्नाटक में विधानसभा के मध्यावधि चुनाव करा के केंद्र एक तीर से दो शिकार कर सकता है—एक तो बिखरे विपक्ष पर सँभलने से पहले प्रहार कर के उसे और पंगु बना देना और दूसरे, गुंडू राव से निजात पाना. पहली बात तो समझ में आती है. मुख्यमंत्री ने अभी हाल ही में कहा है कि कर्नाटक में अर्स कांग्रेस में अकेले देवराज अर्स रह जायेंगे. अर्स कांग्रेस की पराजित मनःस्थिति को देखते हुए यह असंभव नहीं लगता. किंतु यदि मार्च 1983 में विधानसभा की अवधि समाप्त होने पर चुनाव हुए तो देवराज अर्स को अपने बचेखुचे दल को संगठित करने के लिए पर्याप्त अवसर मिल जायेगा.

जहाँ तक गुंडू राव को हटाने का प्रश्न है, उस के लिए मध्यावधि चुनाव कराने की प्रक्रिया से गुजरने की भला क्या जरूरत है. दल की अध्यक्ष जब चाहे उन्हें हटा सकती हैं—पहाड़िया उन का कुछ नहीं बिगाड़ सके तो गुंडू राव की ही क्या बिसात है. हाँ, गुंडू राव को कुछ दिन और बनाये रखने का बहाना अवश्य हो सकता है. इस से इंका अध्यक्ष की छवि भी उज्ज्वल हो सकती है—वह अक्षम और भ्रष्ट लोगों के पक्ष में नहीं हैं, इसीलिए तो मध्यावधि चुनाव करा के उन्हें हटाना चाहती हैं. आम आदमी पर इस का यही प्रभाव पड़ेगा कि श्रीमती गांधी पूरी ईमानदारी से उन का भला करना चाहती हैं, किंतु उन के इर्दगिर्द सिमट आये अक्षम और भ्रष्ट लोग कुछ करने नहीं दे रहे हैं. उन्हें यह भला कौन बतायेगा कि उन के इर्दगिर्द ये लोग आसमान से नहीं टपके. आखिर वे सब उन्हीं के पाले पोसे हुए ही तो हैं.

बिहार

सब एक जगह जुड़े तो

क्या अनेकता के बीच एकता होगी?

29 जुलाई को जब पटना में बिहार प्रांत के कोने कोने से आये पंद्रह हजार से भी ऊपर छात्र युवाओं का जुलूस गांधी मैदान से निकल कर राज्यपाल को अपना 17 सूत्री माँगपत्र देने को चला तो लगा कि फिर एक बड़े आंदोलन का सूत्रपात हो गया. लोगों को 18 मार्च '74 का दिन याद आया जब ऐसे ही एक जुलूस ने कुछ वर्षों के लिए इतिहास की धारा को एक नया मोड़ दे दिया था.

जुलूस को आर ब्लॉक के पास रोक दिया गया. अभी इस पर बातचीत ही चल रही थी कि राज्यपाल महोदय से मिलने के लिए किन किन लोगों को जाना है कि कुछ लोगों ने आगे बढ़ने का प्रयत्न किया. फिर क्या था, पुलिस उन लोगों पर निर्ममतापूर्वक लाठी प्रहार करने लगी. अश्रुगैस के गोले छोड़े गये. सौ से भी ऊपर लोग घायल हुए जिन में कई छात्राएँ भी थीं. आधे दर्जन लोगों को गंभीर चोटें लगीं. छात्रगण अपने निर्धारित कार्यक्रम के अनुसार उस स्थान पर आम सभा नहीं कर पाये. पुलिस चाहती तो उन लोगों को गिरफ्तार कर के भी स्थिति पर काबू पा सकती थी. पर जैसा कि कहा जाता है कि मुख्यमंत्री डॉ. जगन्नाथ मिश्र ने उन्हें निर्ममतापूर्वक कुचलने का आदेश दे रखा था, वही किया गया.

इस जुलूस के स्वरूप और चरित्र को पहचानने के लिए पिछले कुछ महीनों से घट रही घटनाओं का जायजा लेना आवश्यक होगा. जनवरी से ही बिहार के विद्यार्थियों का अपने संस्थान या शासन के अधिकारियों के साथ जो छिटपुट संघर्ष चल रहा था उस का संबंध या तो विद्यार्थियों के द्वारा अपने शिक्षण की दशा में सुधार लाने के प्रयत्न से था या फिर मध्यवर्गीय युवकों की उस आकांक्षा से था जिस के अंतर्गत वे अपने सीमित आर्थिक साधनों के सहारे भी वर्त्तमान युग की कुछ सुविधाओं का उपयोग कर लेना चाह रहे थे. जनता की सामान्य समस्याओं को भी हल करने में विफल सरकार ने इसे अनदेखा कर देने में ही अपनी भलाई समझी. परिणामस्वरूप समस्तीपुर, बेलदौर, मधुपुर, करहगर, मधुबनी, दरभंगा, नौगछिया, पटना तथा देवघर में पुलिस की गोली से छात्र मारे जाते रहे. स्वाभाविक था कि इस से छात्रों में रोष फैला और उन के अंदर एक प्रांत व्यापी संघर्ष शुरू करने की आकांक्षा जागी. उन के सामने '74 के विद्यार्थी आंदोलन की पृष्ठभूमि भी थी.

उपर्युक्त सभी घटनाओं के विरोध में स्थानीय स्तर पर छात्रों की ओर से हड़ताल, सत्याग्रह और धरने का कार्यक्रम चलाया गया. पिछली गर्मी की छुट्टी में सब से अधिक कार्यक्रम पटना शहर में ही चले. छात्र गिरींद्र सिंह को यहीं छत से फेंक कर मार डाला गया था और उस के प्रतिरोध में चलने वाला आंदोलन कहीं बहुत व्यापक नहीं बन जाये इस के लिए पटना विश्वविद्यालय को समय से बहुत पहले ही बंद कर दिया गया. जब विश्वविद्यालय खुलने को हुआ तो विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष अनिलकुमार शर्मा को गिरफ्तार कर लिया गया.

अब तक छात्रों के बीच जो संगठन काम कर रहा था उसे मोटे रूप में तीन समूहों में बाँटा जा सकता है. पहला, संगठन तो विभिन्न विश्वविद्यालयों के छात्र संघों के निर्वाचित प्रतिनिधियों का ही था. दूसरा संगठन छात्र युवा अभियान समिति के नाम से कार्यरत था जिस में ए.आई.एस.एफ., एस.एफ.आई. तथा युवा लोकदल के लोग थे. 'छात्र युवा संघर्ष समिति' के नाम से काम करने वाले तीसरे समूह में विद्यार्थी परिषद, छात्र युवा संघर्ष वाहिनी, समता युवजन सभा, बिहार नौजवान संगठन आदि संगठनों के लोग थे. इन संगठनों की सब से बड़ी कठिनाई यह थी कि ये लोग आपस में कोई रिश्ता नहीं बना पा रहे थे. आखिर में छात्र संघ के प्रतिनिधियों की अप्रैल में गया में एक बैठक हुई और उस में उन लोगों ने तय किया कि छात्र संघों की ओर से 17 सूत्री माँगपत्र ले कर 25 जुलाई को विधानसभा के सामने एक प्रदर्शन किया जायेगा. फिर उन लोगों की बातचीत विभिन्न युवा संगठनों के नेताओं से भी चलने लगी और 6-7 जुलाई की बैठक में उन लोगों ने अपने 29 जुलाई (परिवर्तित तिथि) के प्रदर्शन में सभी युवा संगठनों से सहयोग देने की अपील की. वे लोग तो इस की प्रतीक्षा में थे ही. जिस उत्साह से सभी लोग प्रदर्शन को सफल बनाने के प्रयत्न में लग गये उस से डॉ. मिश्र की सरकार काफ़ी घबरा गयी और मुख्यमंत्री ने समय से तीन दिन पूर्व ही विधानसभा का सत्रावसान करा दिया जिस से कि छात्रों पर किये जाने वाले संभावित सरकारी हमले की बात विरोधी दल वाले विधानसभा में न उठा सकें. विरोधी दल के सदस्यों ने सरकार की दमन करने की इस मंशा का सदन में पर्दाफ़ाश किया और

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

29 जुलाई का छात्र प्रदर्शन . . .

विरोधस्वरूप उन लोगों ने एक दिन पहले से ही सदन का बहिष्कार कर दिया.

इस जुलूस की सब से उल्लेखनीय बात यह थी कि इंदिरा गांधी के पुनः सत्ता पर आने के बाद पहली बार इतनी अधिक संख्या में छात्र पटना की सड़कों पर जमा हुए थे. उन की प्रमुख मांगें थीं : विभिन्न स्थानों पर छात्रों पर हुए गोलीकांड की जाँच सर्वदलीय समिति के द्वारा करा कर दोषी व्यक्तियों को उचित सजा दी जाये; मृत और घायल छात्रों को मुआवजा मिले; गिरफ्तार छात्रों को रिहा किया जाये; महाविद्यालय में नामांकन में सीटों की सीमा समाप्त की जाये, अकादेमीय कैलेंडर का प्रकाशन एवं 40 दिनों के अंदर परीक्षाफल का प्रकाशन किया जाये; कोचिंग सेंटर और प्राइवेट ट्यूशन बंद हों; परीक्षा कदाचार कानून तथा राष्ट्रीय सुरक्षा कानून वापस हों! प्राइवेट रूप से खोले जा रहे इंजीनियरिंग एवं फार्मेसी कालेजों को बंद किया जाये; बेरोजगारों को 200 रु. प्रतिमाह बेरोजगारी भत्ता दिया जाये तथा कुलपति के छात्र संघ से संबंधित विशेषाधिकार को समाप्त किया जाये.

इस प्रदर्शन को देख कर पहली बार सभी दलों की ओर से उदासीन हो गयी जनता को लगा कि अब निकट भविष्य में ही फिर एक ऐसे आंदोलन की शुरुआत हो जायेगी जो इस सत्ता को पलट कर रहेगी. इस से लाभ उठाने की भावना विपक्षी नेताओं में भी जगी है पर वे अभी अपनी निष्क्रियता की स्थिति से इतना ऊपर नहीं उठ पाये हैं कि इस में कुछ योगदान कर सकें. हाँ, '74 के आंदोलन के छात्र नेता इस में एक बार फिर नजर आये. इस प्रदर्शन की कुछ खामियाँ भी रहीं. यह तय किया गया कि सब कुछ छात्र संघ मोर्चा के तत्वावधान में ही होगा इस लिए किसी भी संगठन के लोग अपना बैनर और झंडा नहीं लावें. पर जब गांधी मैदान में छात्र युवा जुटे तो ए.आई.एस.एफ. और एस.एफ.आई. के लोगों ने अपना बैनर फैलाना शुरू कर दिया. छात्रसंघ के लोगों ने जब इस का कड़ा विरोध किया तो एस.एफ.आई. वालों ने तो अपना बैनर समेट लिया, पर ए.आई.एस.एफ. वाले अपने बैनर को समेटने के लिए राजी नहीं हुए. एक समय तो लगा कि दो अलग अलग जुलूस राज्यपाल से मिलने जायेंगे. पर फिर लोगों में विवेक जागा और वे लोग ए.आई. एस.एफ. की जिद्द को नजरअंदाज कर एक साथ चलने को तैयार हुए.

यह भी तय था कि आर ब्लॉक के पास पहुँचने पर पुलिस उन लोगों को रोक देगी तो वे लोग राज्यपाल से वहाँ आने के लिए आग्रह करेंगे और अगर वह आने को तैयार नहीं होंगे तो छात्र संघ के प्रतिनिधियों का एक शिष्टमंडल वहाँ जा कर अपना माँगपत्र देगा. यहाँ भी ए.आई.एस.एफ. तथा एस.एफ.आई. वालों ने अपनी मर्जी से काम लिया और घेरे से आगे बढ़ कर जाने की कोशिश की जिस के

. . . और पुलिस की कार्रवाई

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

चलते भगदड़ मच जाने के कारण वह सभा नहीं हो सकी जिसे सुनने के लिए नये नये छात्र बहुत उत्सुक थे.

29 की रात में छात्र संघ मोर्चा के प्रतिनिधियों की एक बैठक हुई जिस में यह निर्णय लिया गया कि (1) 30 जुलाई को बंद रहे. (2) 1 अगस्त को मशाल जुलूस निकाला जाये (3) 8 अगस्त को कक्षा का बहिष्कार किया जाये और सभी ज़िला मुख्यालयों पर प्रदर्शन किया जाये तथा (4) 21 अगस्त को सारा बिहार बंद हो. इस बैठक में उन लोगों ने यह माँग भी की कि 29 जुलाई को छात्रों पर हुए लाठी प्रहार की सर्वदलीय जांच करायी जाये. फिर 30 जुलाई को छात्र युवा संगठनों की कई सम्मिलित बैठकें हुईं जिन में छात्रसंघ मोर्चा के उपर्युक्त निर्णयों का अनुमोदन किया गया. छात्र संघ मोर्चे की अगली बैठक 11 अगस्त को होगी जिस में इस बात पर भी विचार किया जायेगा कि विभिन्न छात्र युवा संगठनों से किस रूप में मदद ली जाये और उन के साथ कितनी दूर तक का आपसी रिश्ता कायम किया जाये. संभवतः उसी बैठक में यह भी निर्णय लिया जायेगा कि 21 अगस्त के कार्यक्रम के बाद छात्र संघ मोर्चा और युवा संगठनों का एक संयुक्त सम्मेलन भी बुलाया जाये. 30 जुलाई का पटना बंद लगभग सफल रहा.

इस एकता के प्रयत्न में विद्यार्थी परिषद् के प्रति ए.आई.एस.एफ. और एस.एफ.आई. का दृष्टिकोण भी रोड़ा बन सकता है. परंतु आंदोलन अगर गतिशील बन गया तो हो सकता है कि ए.आई.एस.एफ. के लोग नेतृत्त्व न मिलने के कारण आंदोलन से उसी प्रकार अलग हो जायें जिस प्रकार वे '74 में हो गये थे. एस.एफ.आई. के प्रतिनिधि तो खुले रूप में कहते हैं कि वे '74 की 'गल्ती' को फिर नहीं दुहरायेंगे.

इस नये आंदोलन के अपने नये नेता होंगे. बिहार आंदोलन के जो युवा नेता रहे हैं और जो फिर एक बार मैदान में आ गये हैं वे कहाँ तक उन के साथ समन्वय कर आंदोलन को दिशा दे सकेंगे यह तो भविष्य ही बतायेगा. पर आम छात्र उन्हें भी कुछ कुछ उसी प्रकार से देख रहे थे जिस प्रकार वे विपक्षी दलों के बड़े नेताओं को देखा करते हैं. हो सकता है आंदोलन में नये और पुराने छात्र युवा नेताओं की शिरकत उन में कुछ नया राजनीतिक एवं सामाजिक परिवर्त्तन करने की भावना भर सके. अगर ऐसा हो सका तो एक नये नेतृत्त्व का उदय होगा.

महाराष्ट्र

सरकार बनाम दत्ता सामंत

श्रमिक नेता को अंतुले सरकार नज़रबंद रखने पर क्यों तुली हुई है?

28 जुलाई को बंबई उच्चन्यायालय की खंड पीठ से दो न्यायाधीश जब डॉ. सामंत की राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के अंतर्गत की गयी नज़रबंदी के खिलाफ फैसला सुना रहे थे, ठीक उसी समय बंबई पुलिस आयुक्त उन्हें पुनः गिरफ्तार करने की तैयारी कर रहे थे.

करीब महीने भर की सुनवाई के बाद न्यायाधीश डी. एम. रेगे और न्यायाधीश डी. एन. मेहता द्वारा अलग अलग किंतु समान फैसले में कहा गया कि पुलिस ने डॉ. सामंत की नज़रबंदी के जो आधार बताये, उन का नज़रबंद व्यक्ति से संबंध स्थापित नहीं होता और कई आधार तो नज़रबंदी अधिकारी की कल्पना की उपज हैं. पीठ ने नज़रबंदी आदेश को रद्द करने के साथ साथ महाराष्ट्र सरकार की दो मौखिक अपीलें भी अस्वीकृत कर दीं जिन में उच्चन्यायालय (न्यायाधीशों) के आदेश को स्थगित करने के उद्देश्य से सर्वोच्च-न्यायालय में अपील की इजाजत माँगी गयी थी.

डॉ. सामंत की पत्नी श्रीमती विनीता सामंत ने अपने पति की नज़रबंदी को उच्च न्यायालय में चुनौती दी थी. आर्थर रोड कारागार से, जहाँ धारा 144 लागू थी, न्यायालय के फैसले के तुरंत बाद डॉ. दत्ता सामंत को पुलिस की गाड़ी में बाहर लाया गया. लेकिन इस के पूर्व कि श्रमिक नेता पुलिस गाड़ी से बाहर निकलते, एक पुलिस अफसर ने उन्हें पुलिस आयुक्त मधुसूदन कस्बेकर द्वारा भेजे गये गिरफ्तारी आदेश की सूचना दी, फलतः डॉ. सामंत को लिये हुए पुलिस की गाड़ी वापस कारागार में लौट गयी.

गत 24 जून को जब डॉ. दत्ता सामंत बंबई के विशालतम समुद्रतटीय मैदान में मजदूरों की समस्याओं को लेकर आयोजित आमसभा में भाषण देने जा रहे थे, ठाणे पुलिस के आदेशानुसार उन्हें राष्ट्रीय सुरक्षा कानून के अंतर्गत गिरफ्तार कर के बंबई से बाहर भेज दिया गया. तब मुख्यमंत्री अंतुले ने इस श्रमिक नेता की नज़रबंदी के कदम का बचाव इन शब्दों में किया था: 'किसी एक आदमी को नगर में वावेला मचाने के लिए छुट्टा नहीं छोड़ा जा सकता.....'

बंबई तथा पड़ोस की ठाणे-बेला-पुरपुणे की औद्योगिक बस्तियों में कारखाना मालिक डॉ. सामंत से या तो डरते हैं या उन से दोस्ती बना कर रखते हैं. सामंत का नाम लेते ही मालिकों की दुनिया में एक ऐसा व्यक्ति दीखने लगता है जो अपनी माँगों को मनवाने के लिए हिंसक तरीकों को अपनाना गलत नहीं मानता.

कारागार जहाँ से दत्ता सामंत छोड़े और फिर पकड़ कर ले जाये गये

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

दूसरी तरफ महाराष्ट्र सरकार के लिए सामंत एक ऐसा व्यक्ति है जो कारखानों के मजदूरों—अस्थायी और स्थायी सब के लिए न्यूनतम वेतन तथा दूसरी सुविधाएँ दिलाने में व्यापक सफलता पा कर लाखों श्रमिकों का निर्विवाद प्रतिनिधि बन बैठा है, और इस प्रकार सत्तारूढ़ दल समर्थित श्रमिक संघों के अस्तित्व तक के लिए खतरा साबित हो रहा है. बेशक डॉ. सामंत पर मजदूरों को भड़काने, कारखानों में घुस जाने, मालिकों पर हमला कराने, यहाँ तक कि हत्या के मुकद्दमे भी दायर किये गये हैं जिन की संख्या सैकड़ों में होगी.

डॉ. (श्रीमती) विनीता सामंत की ओर से जाने माने वकील तथा राजनीतिक रजनी पटेल (कांग्रेस अर्स) ने जिरह की. जब उन्हें डॉ. सामंत की दुबारा गिरफ्तारी की जानकारी मिली तो उन्होंने यह आक्रोशपूर्ण प्रतिक्रिया व्यक्त की: 'पुलिस आयुक्त मुख्यमंत्री अंतुले के कठपुतले की तरह व्यवहार कर रहा है. गिरफ्तारी का आदेश न्यायालय के फैसले का अपमान है जिस में नजरबंदी के पूर्व आधारों को ठुकराया जा चुका है. हम फिर उच्च न्यायालय में जायेंगे.'

3 जुलाई को उन्होंने डा. सामंत की पुनः गिरफ्तारी को चुनौती दे दी. 4 जुलाई को उच्चन्यायालय ने याचिका पर विचार करना स्वीकार कर लिया. किंतु जमानत की प्रार्थना स्वीकार नहीं की. 12 अगस्त को याचिका की सुनवाई शुरू होगी.

24 जून को डॉ. सामंत की गिरफ्तारी का तीव्र विरोध बंबई की औद्योगिक बस्ती में हुआ था न केवल सामंत के नेतृत्व वाले इंजीनियरी मजदूर संगठन वरन जॉर्ज फर्नांडीस के समर्थन वाली हिंद मजदूर सभा, बंबई लेबर यूनियन आदि श्रमिक संगठनों ने भी 'रासुका' को श्रमिक नेता की गिरफ्तारी के लिए प्रयुक्त करने की सरकारी कार्रवाई की निंदा की थी. कारखानों में तब तक काम ठप्प रहा जब तक डॉ. सामंत ने उन्हें काम पर लौटने का निर्देश जेल से नहीं भेजा.

डॉ. सामंत को श्रमिक आंदोलन में घुसाने के लिए जॉर्ज फर्नांडीस स्वयं श्रेय लेते हैं तथा हाल ही में सामंत ने जॉर्ज के इस प्रयास का समर्थन किया था कि शरद जोशी के किसान आंदोलन की तर्ज पर सभी मजदूर संगठन मजदूरों के अधिकारों के लिए एक मंच से राष्ट्रव्यापी आंदोलन करें.

'रासुका' को समाप्त करने तथा डॉ. सामंत की गिरफ्तारी के विरोध में मुख्यमंत्री के पास श्रमिक नेताओं का प्रतिनिधिमंडल ले जाने से लेकर शिवाजी पार्क में श्रमिकों की रैली आयोजित करने तक की कोशिशों में जॉर्ज फर्नांडीस ने हाथ बँटाया, हालांकि वह स्वयं रैली में उपस्थित नहीं हो सके.

यह भी एक सच्चाई है कि श्रमिक वर्ग में कांग्रेस (इ) मुख्यमंत्री श्री अंतुले की तरह ही लोहियावादी श्रमिक नेता जॉर्ज फर्नांडीस भी डॉ. सामंत की लोकप्रियता से आतंकित हैं. दोनों ही उन के प्रभाव को कम करने तथा अपने अपने समर्थक श्रमिक संगठनों को व्यापक बनाने के लिए चिंतित हैं. जानकार सूत्रों का कहना है कि डॉ. सामंत की तथाकथित 'हिंसा परस्त' कार्यशैली के विरोधी राजनेतागण (अंतुले सहित) अपनी अपनी पार्टियों के सहयोगी श्रमिक संगठनों को मजबूत बनाने के लिए डॉ. सामंत विरोधी कार्रवाई के लिए अघोषित तौर पर एकजुट हो सकते हैं.

बंबई उच्चन्यायालय द्वारा दत्ता सामंत की रिहाई के आदेश के बाद उन के समर्थक: कितनी क्षणिक थी यह खुशी

टाइम्स ऑफ इंडिया सहायता कोश

बाढ़ और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के कारण आई तबाही ने अनेक राज्यों में जानमाल का बेहिसाब नुकसान किया है और लाखों लोग मुसीबत में फँस गये हैं.

अपनी परंपरा के अनुसार बैनेट कोलमैन एँड कंपनी लि. ने पहल करते हुए 'टाइम्स ऑफ इंडिया राहत कोष' में 25,000 रु. जमा कर दिये हैं जिस से कि आपदग्रस्त लोगों की सहायता की जा सके.

पाठकों से अनुरोध है कि वे भी इस कोष के लिए उदारतापूर्वक धनराशि दें. आशा है कि हमें हमेशा की तरह इस बार भी पाठकों का अनन्य सहयोग मिलेगा. दाताओं को सहायता राशि पर आयकर अधिनियम 1961 की धारा 80-जी के तहत छूट भी मिलेगी. 25 रु. या इस से अधिक राशि देने वालों के नाम 'नवभारत टाइम्स' और 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में छपेंगे.

'द टाइम्स ऑफ इंडिया रिलीफ फंड' के नाम से चेक काटें या ड्राफ्ट बनवायें अथवा चाहें तो नकद राशि भेजें. बंबई, दिल्ली, अहमदाबाद, कलकत्ता या पुणे में हमारे कार्यालय आप का दान स्वीकार करने के लिए तत्पर रहेंगे.

दूसरी तरफ इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि सिनेमाघरों से लेकर अंतरराष्ट्रीय कारखानों के मजदूरों के नेता डॉ. सामंत का इंका से पुराना संबंध रहा है. अगर गत वर्ष के विधानसभाई चुनाव में उन्हें इंका टिकट, जिस की भरपूर कोशिश उन्होंने की, मिल जाता तो आज वह निर्दलीय विधायक के बदले कांग्रेस (इ) विधायक कहलाते. स्वयं उन की पत्नी कांग्रेस (इ) समर्थक बतायी जाती हैं.

मुख्यमंत्री अंतुले अपने विरोधी को तब तक दबाना जानते हैं जब तक कि वह उन का चेला न बन जाये. यह बात भूतपूर्व पेशेवर चिकित्सक और अब लड़ाकू श्रमिक नेता सामंत पर भी लागू हो सकती है, जो फिलहाल कांग्रेस (अर्स) के प्रभावशाली नेता तथा भूतपूर्व मुख्यमंत्री शरद पवार के साथ बताये जाते हैं. वैसे यह बात भी कौन नहीं जानता कि पार्टी राजनीति के मंच के पीछे शरद पवार तथा मुख्यमंत्री अंतुले एक दूसरे को दुश्मन नहीं मानते.

जो भी हो, इतना तय है कि सामंत के एक इशारे पर बंबई की अधिकांश कंपनियों में, जिन के उत्पादन पर महाराष्ट्र की ही नहीं पूरे देश की अर्थव्यवस्था निर्भर है, मजदूर औजार रख देंगे और बंबई-ठाणे-बेलापुर-पुणे के कारखानों में सन्नाटा छा जायेगा.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

खून से तर हरी झंडी

रेल पांतों पर अराजकता दौड़ रही है

खोंगसरा से रमेश नैयर

रेल दुर्घटनाओं की श्रृंखला में एक और वीभत्स कड़ी उस समय जुड़ गयी जबकि 16 जुलाई को दक्षिण पूर्व रेलवे के बिलासपुर संभाग में बनवार टंक तथा खोंगसरा स्टेशनों के मध्य इंदौर बिलासपुर पैसेंजर भयावह दुर्घटना की शिकार हो गयी. घटनास्थल के प्रत्यक्ष अवलोकन तथा विविध स्रोतों से एकत्र साक्ष्यों के आधार पर निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि बिलासपुर से 76 किलोमीटर दूर हुए इस हादसे में सैकड़ों यात्री काल कवलित हुए हैं और भारतीय रेलों के इतिहास में इस दुर्घटना को बागमती रेल दुर्घटना के बाद भीषणतम दुर्घटना कहा जायेगा. रेलवे प्रशासन के अनुसार इस विनाशक दुर्घटना में केवल 48 व्यक्ति मारे गये हैं लेकिन सारी स्थितियों पर सम्यक विचार करने पर यही निष्कर्ष निकलता है कि मृतकों की संख्या किसी भी स्थिति में तीन सौ से पाँच सौ के बीच होनी चाहिए.

16 जुलाई की शाम को 7 बज कर 10 मिनट पर हुई इस रेल दुर्घटना की जानकारी रेलवे प्रशासन को पंद्रह बीस मिनट के अंदर ही मिल गयी थी फिर भी समाचारपत्रों और समाचार एजेंसियों को इस की जानकारी रात्रि 11 बजे के बाद उस समय मिली जबकि आसपास के ग्रामीणों ने संदेशवाहकों की लंबी श्रृंखला का काम करते हुए उसे घटनास्थल से लगभग 25 किलोमीटर दूर करगी रोड स्टेशन तक पहुँचाया. वहाँ से जब यह सूचना करगी रोड की बस्ती तक पहुँची तो फिर बिलासपुर के संभागीय मुख्यालय से दूरभाष का संपर्क जुड़ गया.

बहुत सारे कनिष्ठ रेल कर्मचारी जो इस भयावह हादसे से बुरी तरह हिले थे, उन्होंने अनौपचारिक परंतु तथ्यपरक जानकारी कुछ पत्रकारों को दी. इसी जानकारी के आधार पर रात 12 बज कर 5 मिनट पर प्रेस ट्रस्ट ने एक समाचार दिया कि बनवार टंक और खोंगसरा के बीच हुई रेल दुर्घटना में 200 यात्रियों के मारे जाने की आशंका है तथा 80 शव प्राप्त हो चुके हैं. लगभग इसी आशय का समाचार यू. एन. आई. द्वारा भी जारी किया गया जिस में तब तक निकाले जा चुके शवों की संख्या 60 बतलायी गयी थी. परंतु इन समाचारों के जारी होने के लगभग सवा घंटे बाद प्रेस ट्रस्ट पर कलकत्ता से एक समाचार दिया गया जिस में बताया गया कि दुर्घटना में एक दर्जन व्यक्ति मारे गये हैं तथा 28 घायल हैं. स्पष्ट है यह समाचार कलकत्ता के गार्डन रीच स्थित दक्षिण पूर्व रेलवे के मुख्यालय द्वारा प्रदत्त जानकारी के आधार पर दिया गया होगा.

सवा घंटे के अंतराल में प्राप्त 80 लाशों में से 68 के पुनरुज्जीवित हो उठने वाले प्रसंग ने मुझे घटनास्थल तक पहुँचने के लिए प्रेरित किया और मैं रात्रि ढाई बजे जीप से रवाना हो गया. रायपुर से 114 किलोमीटर दूर बिलासपुर तक जीप से पहुँचने पर पता चला कि घटनास्थल तक रेल के अलावा अन्य किसी माध्यम से नहीं पहुँचा जा सकता. उसी समय यह भी पता चला कि घायलों को ले कर एक राहत ट्रेन बिलासपुर पहुँच चुकी है. उस दिन (17 जुलाई) प्रातः 6 बजे बिलासपुर स्थित वरिष्ठ रेल अधिकारियों ने बताया कि 30

इंदौर-बिलासपुर पैसेंजर के एक डिब्बे पर चढ़ा हुआ माल गाड़ी का वैगन और उनके बीच फंसा हुआ एक शव

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शव निकाले जा चुके हैं और 40 घायलों को उपचारार्थ अस्पताल में भरती किया जा चुका है. वरिष्ठ वाणिज्य अधीक्षक ने बताया कि केवल तीन व्यक्ति गंभीर रूप से घायल हैं. परंतु सरकारी अस्पताल में जा कर पता किया तो डाक्टरों ने जानकारी दी कि दस यात्री गंभीर स्थिति में है. इस के अतिरिक्त रेलवे स्टेशन पर ही बीसियों ऐसे व्यक्ति मिले जिन के चेहरे, हाथ और पैरों में हल्की चोटें थीं और प्रथमोपचार के बाद वे अपने अपने घरों की तरफ जाने के लिए रेल पकड़ने की गरज से प्लेटफार्म पर थे. उन्होंने बताया इस प्रकार के अन्य बहुत सारे लोग बिलासपुर स्थित अपने परिचितों व रिश्तेदारों के यहाँ चले गये थे. अनेक व्यक्ति बस तथा टैक्सियाँ पकड़ कर रवाना हो चुके थे.

मुंशीलाल नामक इंदौर के एक सज्जन ने बताया वह पीछे से छटवें या सातवें डिब्बे में बैठे हुए थे. एकाएक पीछे से कोई जोरदार धक्का लगा और कुछ ऐसा मालूम हुआ कि उन की गाड़ी की रफ्तार एकाएक कई गुना तेज हो गयी है, फिर बड़ा जोरदार धमाका सा हुआ और उस डिब्बे में बैठी हुई सवारियाँ, सामान आदि सब हवा में उड़ता हुआ मालूम हुआ. लोग कुछ समझ नहीं पा रहे थे कि आखिर हो क्या गया है. इसी ऊहापोह में उन की बोगी हवा में कुछ उछली और उछलने के साथ ही जमीन पर गिर कर एक तरफ झुक गयी. यह सब कुछ एक डेढ़ मिनट में ही हो गया. घटनाओं का यह तूफानी सिलसिला इतनी तेजी के साथ घटता गया कि सारी बातें सिलसिलेवार याद रहना भी कठिन है.

बिलासपुर स्टेशन पर ही अरुण शर्मा, फिरन्तिन बाई, मानकुंवर और अन्य अनेक ऐसे व्यक्तियों ने, जो उसी ट्रेन से यात्रा कर रहे थे, लगभग इसी प्रकार का अनुभव बताया. गाड़ी की पिछली चार बोगियाँ और गार्ड की ब्रेक वान के ऊपर पीछे आ रही मालगाड़ी का इंजन तथा कोयले से भरे हुए वैगन चढ़ गये थे. जो बोगियाँ सुरक्षित थीं उन के यात्रियों को भी गहरी चोटें आयी थीं. पीछे से पाँचवें डिब्बे में बैठी पामगढ़ की फेंकनबाई का पति चैतराम साहू जबर्दस्त झटका खा कर बोगी के भीतर एक सिरे से टकराने के कारण मूर्छित हो गया था. परंतु रात भर किसी प्रकार का उपचार न मिल पाने के कारण उस ने मूर्छावस्था में ही दम तोड़ दिया. बिजूरी कोयला खान में काम करने वाला चैतराम अपनी गर्भवती पत्नी तथा तीन बच्चों को अपने गाँव छोड़ने के लिए उस गाड़ी में यात्रा कर रहा था. बिलासपुर रेलवे स्टेशन के प्लेटफार्म पर चैतराम की लाश पड़ी हुई थी और पास बैठे हुए उस के बच्चे तथा विधवा पत्नी रो रही थी. रेलवे के दो मेहतरों को चैतराम के शव को मैला ढोने वाली हाथ गाड़ी में पटकते देख फेंकनबाई गिड़गिड़ाने लगी: "रुपया, घड़ी, रेडियो सब तो छीन लिया, अब इस की मिट्टी तो मत खराब करो." लेकिन उस की अनुनय विनय सब बेअसर हो रही थी. सहसा भूतपूर्व सांसद मदनलाल शुक्ला की नजर उन पर पड़ गयी. उन्होंने हस्तक्षेप किया और इस संवाददाता ने जब अपना कैमरा साधा तो पास ही खड़े रेलवे के एक अधिकारी ने मेहतरों को इशारा किया; मेहतर तत्काल मैला ढोने वाला ठेला खींच कर भागे.

फेंकनबाई ने बताया कि पीछे के चार डिब्बों के ऊपर कोयले का ढेर गिर गया था और मालगाड़ी के वैगन उन पर सवार थे, इस लिए उस वक्त सिवाय बचाओ बचाओ की आवाजों तथा दम तोड़ते हुए लोगों की चीख पुकार के और कुछ सुनायी नहीं दे रहा था. जो लोग झटके के साथ डिब्बों से दूर जा कर गिरे थे, उन के शव चारों तरफ बिखरे हुए थे. गंभीर रूप से घायल हो कर इधर उधर पड़े हुए लोग सहायता की याचना कर रहे थे. परंतु मददगार कोई नहीं था. जिन डिब्बों के यात्री सकुशल थे, उन में से कुछ आगे बढ़े भी परंतु एक तो अंधेरा घिरने लगा था और दूसरे अधिकांश व्यक्ति टनों बोझ के नीचे दबे हुए थे इस लिए कोई भी विशेष सहायक नहीं हो सकता था. इस के विपरीत कुछ लोग आसपास का सामान नजर बचा कर उठाने लगे थे. यात्रियों का एक बड़ा वर्ग तो इस कदर दहशत में डूब गया था कि हाथ पर हाथ रखे एक किनारे बैठा रहा.

लगभग आधे घंटे के बाद पास के कुछ ग्रामीण आये और कुछ लोगों को मलबे से निकाला. थोड़ी देर बाद ही रेलवे की राहत गाड़ी भी पहुँच गयी. इस राहत गाड़ी में रेलवे पुलिस के संगीनधारी जवान भी थे. उन्होंने सब से पहला काम तो यह किया कि दुर्घटनास्थल की घेरेबंदी कर दी और जो सही सलामत बच गये थे उन्हें फौरन राहत ट्रेन में बैठ जाने का आदेश दिया. राहत गाड़ी में पुलिस आयी, पुलिस की संगीनें आयी, चंद मजदूर आये और एक चिकित्सा दल भी आया, लेकिन पानी नहीं आया. लोग पानी की एक एक बूंद के लिए तरसते रहे और गंभीर रूप से घायल वे लोग जिन के लिए एक घूंट पानी एक बड़ी नियामत हो सकता था, सूखे गलों से कराहते रहे, दम तोड़ते रहे. चिकित्सा व्यवस्था नगण्य थी. बीसियों चिकित्सा के अभाव में मर गये.

बिलासपुर स्टेशन पर इस संवाददाता सहित चार पत्रकारों के दल ने घटनास्थल तक पहुँचने के लिए रेलवे के संभागीय वाणिज्य अधीक्षक रतनसिंह से संपर्क किया. उस समय सुबह के सवा सात बजे थे. **उन्होंने पत्रकारों के कंधों पर लटके हुए कैमरे कुछ गौर के साथ देखे** और फिर इस दर्दनाक हादसे पर गहरा दुख व्यक्त करने की औपचारिकता निभाने के बाद बताया कि ठीक साढ़े आठ बजे एक रिलीफ ट्रेन घटनास्थल की ओर रवाना होगी. दुर्घटना की संक्षिप्त जानकारी देते हुए उन्होंने बताया कि **मालगाड़ी का एक खराब पड़ा इंजिन एकाएक मालगाड़ी को ले कर चल पड़ा** और आगे जा रही इंदौर बिलासपुर सवारी गाड़ी को पीछे से ठोकर मार दी. उन के मुताबिक कुल तीस व्यक्ति ही मरे थे और तीन अन्य गंभीर रूप से घायल थे.

बाहर निकल कर रेलवे के कुछ कनिष्ठ अधिकारियों से दुर्घटना के बारे में पूछताछ की तो उन्होंने मौन साध लिया. उन का कहना था कि ऐसे प्रसंगों पर उन्हें अपनी ओर से कुछ भी कहने की अनुमति नहीं है. **एक कनिष्ठ अधिकारी ने बताया कि उन्हें बाहर टेलीफोन पर भी किसी से संपर्क करने की इजाजत नहीं दी गयी है और बहुत सारे कनिष्ठ अधिकारियों के टेलीफोन कल रात से ही अचानक खराब हो गये हैं.** प्लेटफार्म पर कार्यरत तीसरी और चौथी श्रेणी के कर्मचारी अलबत्ता बहुत बेबाकी से बातचीत कर रहे थे. उन की आपसी बातचीत से ही मालूम हुआ कि दुर्घटना में सैंकड़ों लोग मारे गये हैं और सारी गलती आला अफसरों की है.

रिलीफ ट्रेन ठीक साढ़े आठ बजे प्लेटफार्म पर लग चुकी थी. राहत सामग्री, भोजन, जेनरेटर और गैस के सिलेंडर लाद कर तीन चार सौ रेलवे मजदूर गाड़ी में बैठ चुके थे. ठीक उसी समय पत्रकारों से कहा गया कि जब तक वे स्टेशन मास्टर से लिखित अनुमति नहीं लेंगे तब तक उन्हें उस गाड़ी से यात्रा नहीं करने दी जायेगी. ऐन वक्त पर दौड़ कर चारों तरफ स्टेशन मास्टर की तलाश की गयी और अंततः उन से लिखित अनुमति मिल गयी. लेकिन यह अनुमति वहाँ से गाड़ी के आगे सरकने की इजाजत तो नहीं थी. लिहाजा घायलों तथा अन्य जरूरतमंदों को राहत पहुँचाने के लिए भेजी जाने वाली यह गाड़ी बिलासपुर के ही रेलवे स्टेशन पर खड़ी रही. उस बीच दो गाड़ियाँ घटनास्थल के लिए आसपास के स्टेशनों से रवाना कर दी गयी थीं. अंततः यह राहत ट्रेन दोपहर को 12 बजे बिलासपुर से रवाना हुई और सरकती दोपहर पौने तीन बजे खोंगसरा पहुँची.

पत्रकार बेचैन होने लगे थे. वे शाम ढलने से पहले घटनास्थल तक पहुँच जाना चाहते थे, ताकि अंधेरा होने से पूर्व कुछ देख लें और तस्वीरें उतार लें. वैसे खोंगसरा से दुर्घटनास्थल केवल 10 किलोमीटर ही रह गया था लेकिन सिवाय रेलगाड़ी के या पटरियों में पैदल चलने के वहाँ तक पहुँचने का और कोई माध्यम नहीं था. खोंगसरा स्टेशन के अधिकारियों से जब भी पूछा जाता कि गाड़ी कब रवाना होगी, एक ही उत्तर दिया जाता, "बस थोड़ी देर में." शाम के छह बजे तक रेलवे की यह थोड़ी देर पूरी नहीं हुई. **इसी बीच रेलवे के एक श्रमिक ने धीरे से इस संवाददाता को**

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पटना की रेल दुर्घटना

सूर्यनारायण चौधरी

जब यंत्र परिचालन करने वालों में गैर जवाबदेही की भावना आ जाये और यंत्र भी ढीले ढाले होने लग जायें तब स्थिति कितनी भयंकर हो सकती है यह आजकल भारतीय रेलों में प्रति सप्ताह होने वाली दुर्घटनाओं को देख कर समझा जा सकता है.

23 जुलाई की सुबह के 10 बजे के करीब यात्रियों से भरी हुई 2पी.जी. गाड़ी पटना जं. के प्लेटफार्म को स्पर्श ही करने वाली थी कि उस के 14 में से 8 डिब्बे पटरी से उतर गये. जलआपूर्ति के खंभे से टकरा जाने के कारण डिब्बे धराशायी होने से तो बच गये, पर किनारे पर खड़े लोगों में से 3 व्यक्तियों की जानें गयीं और करीब 2 दर्जन व्यक्ति घायल हुए जिस में से 4 व्यक्तियों की हालत गंभीर है. दो डिब्बे क्षतिग्रस्त हो गये. सुबह पटना से गया जाने वाली गाड़ी में भीड़ इतनी अधिक रहती है कि लोग छत और पायदान पर ही नहीं लद जाते, बल्कि पहिए के पास बैटरी रखने वाले स्थान पर भी किसी प्रकार दुबककर यात्रा करते हैं. इसी गाड़ी से पटना में कार्य करने वाले दैनिक यात्री भी जाते हैं. अतएव लोकमानस इस बात पर विश्वास करने के लिए ही तैयार नहीं है कि सिर्फ तीन व्यक्ति इस दुर्घटना में मरे होंगे.

घटनास्थल पर मौजूद रेलवे अधिकारी दुर्घटना के कारणों की जानकारी देने में हिचकिचा रहे थे. वे लोग मंडल रेल मैनेजर दानापुर के आने की प्रतीक्षा में थे. घटना के तुरंत बाद पटना के अस्पतालों से डाक्टर आ गये और गंभीर रूप से घायलों में से चार व्यक्तियों को तत्काल अस्पताल पहुंचाया गया जिन में से एक की तुरंत मृत्यु हो गयी.

जब मैं स्थानीय सांसद रामवतार शास्त्री के साथ दुर्घटना के आधा घंटा बाद वहां पहुंचा तब तक काफी भीड़ इकट्ठा हो गयी थी. दो व्यक्तियों की लाशें और एक व्यक्ति का कटा हुआ हाथ खून से लथपथ था. कुछ घायल व्यक्ति भी वहां मौजूद थे. पूछने पर पता चला कि उन के लिए स्टेचर का इंतजार किया जा रहा है. वे घायल यात्री ऐसे थे कि थोड़ा सा सहारा देकर सड़क तक पहुंचाये जा सकते थे और वहां से किसी रिक्शे पर या रेलवे की ही किसी सवारी पर चढ़ा कर उन्हें तुरंत अस्पताल पहुंचाया जा सकता था. पता नहीं सेंट जान एंबुलेंस से शिक्षा पाये रेलकर्मी (जिन को यह सिखाया जाता है कि जब स्टेचर न मिले तो घायल व्यक्ति को किसी प्रकार काम चलाऊ स्टेचर पर लाद कर डाक्टर के पास ले जाना चाहिए) इस काम के लिए तुरंत क्यों नहीं लगाये गये. अगर दुर्घटना में घायल यात्री के शरीर से खून बह रहा हो तो अस्पताली स्टेचर आने की प्रतीक्षा करना क्या उस व्यक्ति के साथ अपराध किया जाना नहीं है?

दुर्घटना स्थल पर जो 10 हजार की भीड़ इकट्ठी हो गयी. उस को नियंत्रित करने में भी पुलिस को कई बार लाठी चलानी पड़ी. दुर्घटना हो जाने पर कुछ सौ लोगों का जमा हो जाना घायल व्यक्तियों के बचाव के लिए तो आवश्यक होता है, पर इतने अधिक आदमियों का उमड़ पड़ना स्थिति को और भी अधिक घातक बना देता है. दरअसल यह अधिकांश लोगों की सहृदयता नहीं बल्कि उन के स्वभाव की दर्शनप्रियता ही थी.

उन में से कुछ लोगों को जब पता चला कि सिर्फ तीन ही आदमी मारे गये तो उन की दिलचस्पी इस में समाप्त हो गयी. उन के चेहरे से ऐसा लगा कि अगर सौ लोग मरे होते तो शायद वे अधिक उदास होते और तब इस के लिए सरकार को दोष देते (वैसे 2 हजार व्यक्तियों के बदलाघाट में मर जाने पर भी कितने लोगों के चेहरे पर उदासी आयी थी!) यही कारण है कि हर सप्ताह कहीं न कहीं रेल दुर्घटना हो जाती है इस पर कोई चिंता उनमें पैदा नहीं हुई. रेलवे के जो अपने नियम हैं उन के अनुसार अगर एक मालगाड़ी का भी कोई डिब्बा पटरी से उतर जाता है और उस में किसी की जान न भी जाये तो भी उस के लिए जवाबदेह रेलकर्मचारी उतनी ही सजा के भागीदार होते हैं जितनी सजा के भागीदार यात्री गाड़ी की इसी प्रकार की दुर्घटना के लिए होते हैं.

घटना स्थल पर मौजूद संसद सदस्य रामावतार शास्त्री ने दुर्घटना का कारण रेल की लाइनों की ठीक से मरम्मत न किये जाते रहना बताकर मांग की है कि रेलमंत्री केदार पांडेय को अविलंब त्याग पत्र दे देना चाहिए और रेलवे बोर्ड के सभी सदस्यों को तुरंत हटा दिया जाना चाहिए.

इन रेल दुर्घटनाओं की अंतिम जवाबदेही तो रेलमंत्री और रेलवे बोर्ड के अधिकारियों के ऊपर है ही, पर सरकारी कर्मचारियों में काम न करने की जो भावना पनप गयी है और जिस के चलते मामूली कारणों से दुर्घटनाएं होने लग गयी हैं—उस पहलू पर भी विचार किये जाने का अब समय आ गया है.

बिहार विधानसभा और विधानपरिषद् में भी इस घटना की चर्चा हुई और उत्तेजित विपक्ष सदस्यों ने मुख्यमंत्री को वक्तव्य देने को कहा. मुख्यमंत्री ने इसे केंद्रीय विषय बता कर वक्तव्य देने से इनकार किया. इस पर विपक्ष के सदस्यों ने सदन का बहिष्कार किया.

बताया कि रेलवे के अधिकारी किसी भी स्थिति में पत्रकारों को रात अंधेरा होने तक घटनास्थल पर नहीं पहुंचने देंगे. तब तक वहां से सारी लाशें हटा दी जायेंगी और बाकी सारी बातें भी दुरुस्त कर ली जायेंगी. उसी कर्मचारी से पता लगा कि तीन क्रेन सबेरे से ही घटना स्थल पर पहुंच चुकी हैं और अपने काम में लगी हैं.

धीरे धीरे कुछ और रेलवे कर्मचारी वहां एकत्र हो गये थे. अधिकांश इस दुर्घटना से दुखी थे. सभी का कहना था कि लाशों की सही ढंग से देखभाल नहीं हो रही है. आधे से ज्यादा इंजनों में कोई न कोई गड़बड़ी है. किसी की ब्रेक खराब है तो किसी का कोई और हिस्सा. मरम्मत नहीं होती, कल पुरजे नहीं मिलते और ड्राइवरों से कहा जाता है गाड़ियां दौड़ाओ. यदि कोई ड्राइवर हल्का सा भी विरोध करता है या खराब इंजन को ले जाने से इनकार करता है तो उसे दंडित किया जाता है. निलंबन तो आम बात है. (देखें : दिनमान, 2–8 अगस्त, 1981).

तीसरी और चौथी श्रेणी के इन कर्मचारियों का कहना था कि इंदौर बिलासपुर एक्सप्रेस की दुर्घटना भी इसी तरह की उपेक्षा और प्रताड़ना का परिणाम है. उन का कहना था कि—मालगाड़ी के ड्रायवर ने पेंड्रारोड स्टेशन पर स्टेशन मास्टर को लिखित आवेदन में बताया था कि इंजन के ब्रेक काम नहीं कर रहे हैं इसलिए वह मालगाड़ी को आगे लेकर नहीं जायेगा. परंतु उसके लिखित आवेदन को अनदेखा करते हुए और उस के अनुरोध को अनसुना करते हुए उसे आदेश दिया गया कि वह गाड़ी को लेकर आगे बढ़े. फिर वही हुआ जो होना था. गहरी ढलान पर मालगाड़ी का ब्रेक बेकाम हो गया और आगे आती हुई सवारी गाड़ी को उस ने ठोकर मार दी.

एक अन्य कर्मचारी ने बताया कि जितनी भी दुर्घटनाएं हो रही हैं वे सब इसी तरह की असावधानी की वजह से हो रही हैं. रेल मार्ग पुराने हैं उस समय के जब कि चालीस मील की अधिकतम रफ्तार से गाड़ियां चला करती थीं अब उन्हीं पटरियों पर से एक सौ बीस किलोमीटर प्रतिघंटा की गति से रेलगाड़ियां दौड़ाने के लिए कहा जाता है. फिर रेलों के पहिये भी वही पुराने हैं. बहुत सारे उपकरण भी वही हैं. जिन्हें 60 किलोमीटर प्रति घंटे की रफ्तार से दौड़ाने के लिए बनाया गया था. अब उन्हें जब दुगुनी गति से दौड़ाया जाता है तो वही होता है जो बागमती पुल पर हुआ और अब खोंसरा के पास हो गया. वहां ब्रेक जरा जोर से लग गया तो गाड़ी पलट गयी और हजारों लोग मर गये. यहां ब्रेक लग नहीं सकी इसलिए पांच सौ से ज्यादा लोग मारे गये, करोड़ों का नुकसान हो गया.

इसी बीच एक मालगाड़ी पास की रेल पटरी पर आकर रुकी. यह दुर्घटना स्थलकी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तरफ से आई थी और बिलासपुर जाने वाली थी. एक श्रमिक ने दौड़कर बताया कि मालगाड़ी का एक वैगन लाशों से भरा हुआ है. यह संवाददाता भी दौड़कर माल गाड़ी के उस बंद वैगन के पास पहुँचा. भीषण दुर्गंध से ही यह अहसास हो गया था कि वैगन में लाशें हैं. फिर पास खड़ी राहत गाड़ी के एक डिब्बे में चढ़ कर वैगन के थोड़े से खुले हुए हिस्से से अंदर झांका तो बड़ा बीभत्स दृश्य था. पच्चीस तीस शव वैगन के अंदर बेतरतीब पड़े थे. फ्लैशगन और कैमरा लेने के लिए दौड़ा, परंतु तभी मालगाड़ी सीटी देकर रवाना हो गयी.

इधर राहत गाड़ी खोंगसरा पर अविचल खड़ी थी रात के 8 बजे थे. इसी समय पता लगा कि रेल उपमंत्री की विशेष रेलगाड़ी पाँच सात मिनट के अंदर ही खोंगसरा पहुँच रही है. यह सूचना सही थी और रात्रि 9 बजे हम दुर्घटना स्थल पर पहुँच गये.

हम 17 जुलाई की रात को घटना स्थल पर पहुँचे थे. चारों तरफ घना जंगल, रेल पटरियों के दोनों तरफ पहाड़ उनके पार्श्व में गहरी खाइयों. दुर्घटना में चकनाचूर पड़े सवारीगाड़ी के डिब्बों और मालगाड़ी के वैगनों के ध्वंसावशेषों के पास टूटा हुआ पुल. इस पुल के नीचे से बहती नुई नदी में कई यात्रियों के शव गिरने की आशंका व्यक्त की गयी है. व्यापक मात्रा में घटनास्थल पर ब्लीचिंग पाउडर छिड़क दिये जाने के बावजूद तीखी दुर्गंध के भभके लगातार उठ रहे थे. पर रेलवे के अधिकारी का कहना था कि घटना स्थल पर अब कोई शव बाकी नहीं है. घनी अंधेरी रात में कोयले के ढेर से किसी शव की टांग बाहर झाँकती हुई दिख रही थी. घटनास्थल पर जल रहे गैसों की काँपती हुई रोशनी में और कुछ देख पाना कठिन था. भिलाई इस्पात संयंत्र से बुलाई गयी 120 टन क्षमता वाली क्रेन से क्षतिग्रस्त यात्री डिब्बों तथा वैगनों को हटाने का काम अनवरत चल रहा था. यात्री ट्रेन का डिब्बा घटना स्थल के लगभग दो फर्लांग की दूरी तक हटा दिया गया था. रात्रि लगभग 9 बजे केंद्रीय रेल उपमंत्री श्री मल्लिकार्जुन तथा रेलवे मंडल के अध्यक्ष श्री गुजराल की उपस्थिति में क्षतिग्रस्त दो वैगनों को पटरी से उठा कर उस के पार्श्व में बनी खाई में ढकेल दिया गया. रेल अधिकारियों से हो रही बातचीत के दौरान श्री गुजराल दुर्घटना तथा उस से हुई क्षति के बारे में दिये जा रहे बयानों के विरोधाभास पर खिन्न होकर बार बार अधिकारियों पर बरस रहे थे.

श्री गुजराल, श्री मल्लिकार्जुन एवं दक्षिण पूर्व रेलवे के महाप्रबंधक श्री पी. ए. पई के साथ स्थानीय अधिकारियों की बातचीत का मुख्य विषय रेलवे को हुई क्षति ही था. लगभग एक घंटे की इस वार्ता में एक बार भी न तो घायलों के उपचार की चर्चा हुई और न ही

मालगाड़ी का इंजन और उस से हुआ विनाश

मृतकों की तलाश का कोई जिक्र हुआ. एक बार मृतकों की संख्या का जिक्र हुआ भी तो श्री गुजराल ने प्रतीकात्मक लहजे में कहा—"फोर्टी इज इनफ". सारी बातचीत अंग्रेजी में हो रही थी उसी दौरान यह बताया गया कि मालगाड़ी के 19 वैगन बिल्कुल बेकार हो चुके हैं तथा उन्हें भविष्य में उपयोग में नहीं लाया जा सकता. इन में से सात रेल की पटरी पर थे और 10 पटरी से उतर कर बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो चुके थे. यात्री गाड़ी के कितने डिब्बे क्षतिग्रस्त हुए इस की चिंता किसी को नहीं थी. दो तीन बार चर्चा माल गाड़ी के डीजल इंजन की हालत पर केंद्रित रही. जब शीर्ष अधिकारी डीजल इंजन की फिक्र इस तरह कर रहे थे, तब पास ही खड़े रेलवे के कुछ सामान्य कर्मचारी उद्विग्न हो रहे थे और उन में से एक की टिप्पणी थी—सैकड़ों इंसानों के जीवन से इन के लिए कहीं ज्यादा मूल्यवान है यह इंजन.

यद्यपि दुर्घटना के कारणों को विरोधाभासी बयानों से ढकने का प्रयास किया गया है परंतु दुर्घटना से सीधी तौर पर जुड़े हुए व्यक्तियों, प्रत्यक्षदर्शियों और भुक्तभोगियों से हुई मेरी लंबी बातचीत से जो हकीकत सामने आयी है उस के अनुसार 33 डाउन इंदौर बिलासपुर एक्सप्रैस 16 जुलाई की शाम को कोडरी स्टेशन के बाद बनवार टंक स्टेशन से गुजरी. वहाँ खड़ी मालगाड़ी के डीजल इंजन का ड्रायवर ट्रेन को आगे ले जाने से इनकार कर रहा था. उस का कहना था कि ब्रेक काम नहीं कर रहे हैं. इसी आशय की एक लिखित सूचना वह स्टेशन पर दे चुका था. परंतु उसे कहा गया कि मालगाड़ी को ले कर आगे बढ़े, इसी बीच इंदौर बिलासपुर एक्सप्रैस भी वहाँ पहुँची. चूंकि यात्री ट्रेन के निर्धारित मार्ग पर डीजल इंजन वाली गाड़ी खड़ी थी, इसलिए वह अपना रेल मार्ग बदल कर आगे गयी. अभी यात्री ट्रेन कुछ ही दूर चल पायी थी कि माल गाड़ी का ड्रायवर भी अपनी ट्रेन को ले कर आगे बढ़ा. कोंडरी से खोंगसरा के बीच भारी ढलान वाला

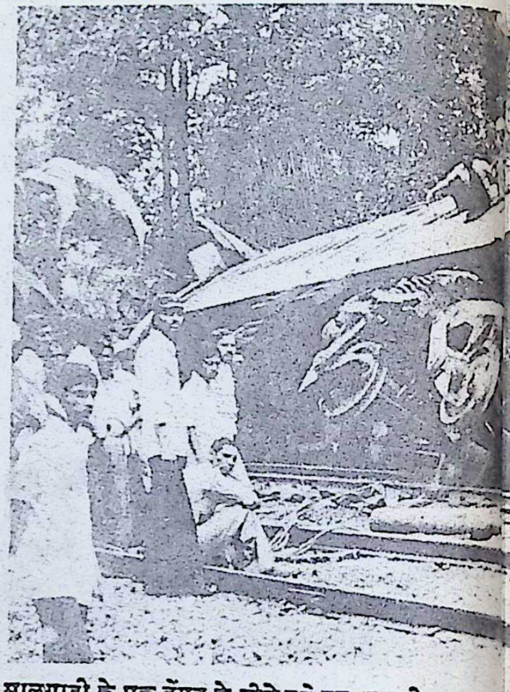

मालगाड़ी के एक वैगन के नीचे दबे हुए सवारी गाड़ी के अवशेष

रेलवे मार्ग होने के कारण अच्छे ब्रेक होना आवश्यक थे. परंतु इंजन के गति पकड़ने के साथ जैसे ही ड्रायवर ने ब्रेक लगाये उसे पता लगा कि ब्रेक फेल हो चुके हैं इस स्थिति का ज्ञान होते ही ड्रायवर इंजन बंद कर के गहरी ढलान पर पहुँचने से कुछ क्षण पूर्व ही उस से कूद गया. इंजन में अब शेष रह गया था डीजल असिस्टेंट जो पूरी निष्ठा पूर्वक अपने दायित्व से जुड़ा रहा. तब तक डीजल इंजन लगभग 100 कि. मी. प्रति घंटा की गति से दौड़ रहा था जब कि उस के सामने चल रही इंदौर बिलासपुर पैसेंजर की रफ्तार 50 कि. मी. प्रति घंटा के आस पास थी. इस स्थिति में यात्री ट्रेन के पीछे बैठे गार्ड एवं माल गाड़ी के डीजल असिस्टेंट को दुर्घटना का निश्चय ही पूर्वाभ्यास हो गया. परंतु दोनों असहाय थे. खोंगसरा स्टेशन से लगभग 10 कि. मी. पूर्व अनियंत्रित होकर ढलान पर दौड़ती हुई माल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गाड़ी ने इंदौर एक्सप्रेस को जबरदस्त टोकर पीछे से मारी.

सवारी गाड़ी को पीछे से डीजल इंजन द्वारा टक्कर मारने के कारण इंदौर विलासपुर एक्सप्रेस का इंजन अलग होकर आगे बढ़ गया. घटनास्थल से 10 कि. मी. दूर खोंगसरा स्टेशन पर पहुँचते ही ड्रायवर ने इस भीषण हादसे की सूचना भी वहाँ से तत्काल विलासपुर स्थित दक्षिण पूर्व रेलवे के संभागीय मुख्यालय को दी थी. सूचना मिलने के तत्काल पश्चात शहडोल भी खबर कर दी गयी. और राहत दल रवाना कर दिया गया. परंतु राहत दल के घटना स्थल पर पहुँचने के साथ ही जो दृश्य सामने आया वह भयावह था, अमानवीय था और नृशंसता की चरम सीमा को स्पर्श करने वाला था. लूट मार शुरू हो गयी. लोग कराह रहे थे पर राहत पहुँचाने वाले हाथ उन के गले से आभूषण हाथों से कलाई घड़ियाँ छीन रहे थे उन की जेबें टटोल रहे थे. और आस-पास फैले कीमती सामान को बटोर रहे थे. प्रत्यक्षदर्शियों के अनुसार यह क्रम लगभग एक घंटे तक चलता रहा. अंधेरा हो जाने के कारण लूट में जुटे राहत कर्मी काफी राहत महसूस कर रहे थे.

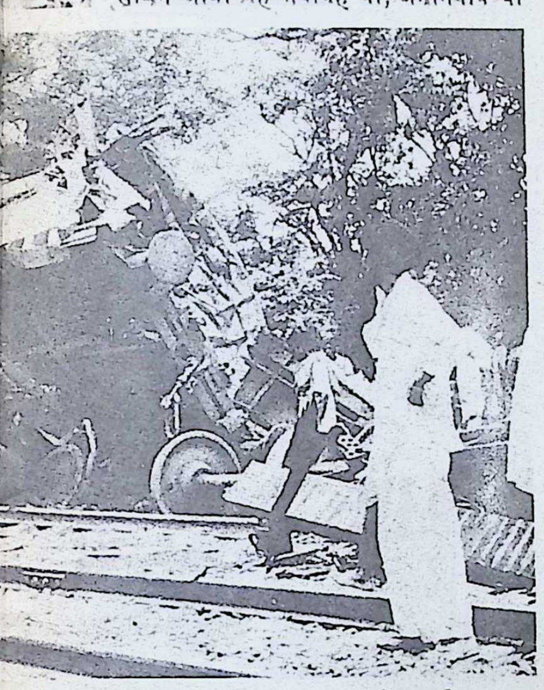

चेतराम के शव के पास उसकी विधवा पत्नी और बच्चे

खोंगसरा, उसलापुर तथा विलासपुर स्टेशन पर जितने शव देखने को मिले सब के सब पहचाने जा सकते थे. केवल दो महिलाओं की लाशें मिली और एक बच्चे का शव दिखाई नहीं दिया. किसी भी शव के पास कोई मूल्यवान सामग्री नहीं थी, अंगूठी और कलाई घड़ी तक नहीं. घटना स्थल से कोई भी कीमती सामान प्राप्त नहीं हुआ. एक क्षतिग्रस्त स्कूटर वहाँ पड़ा था. दो खाली ब्रीफकेस भी दिखे. उन में से एक का ताला शायद नहीं खुला था इसलिए उसे एक किनारे से काट कर सामान निकाल लिया गया. बुढ़ार से बीड़ी पत्ता विक्रय के बाद लगभग 60,000 रु. की राशि साथ ले कर चले चेलाराम का शव तो मिल गया पर वह राशि नहीं मिली. कहाँ गयी यह नगद रकम और सारा कीमती सामान? क्या विनाश ने बच्चों तथा महिलाओं पर विशेष रहम खाया था, या फिर दुर्घटना में बचे हुए लोगों और अन्य स्रोतों द्वारा दी गयी इस आशय की जानकारी सही है कि बहुत सारे शव विशेषकर बच्चों तथा महिलाओं के, पास के जंगल में फेंक दिये गये? जंगल से लगातार उठ रही तीखी दुर्गंध क्या इस आरोप की पुष्टि नहीं करती. रेल उपमंत्री मल्लिकार्जुन ने दुर्घटना स्थल पर बताया कि कोयले के ढेर में अब कोई भी शव नहीं दबा हुआ है, परंतु उन की घोषणा के दो दिन बाद 17 जुलाई को उसी ढेर के किनारे से मलबा हटाने पर पाँच लाशें मिलीं. उसी समय कोयले के ढेर से एक शव के अवशेष झाँक रहे थे. कोयले से अभागे यात्री का शरीर तथा वस्त्र इस प्रकार काले पड़ गये थे कि उन की पहचान कोयले से अलग कर पाना अत्यंत कठिन था.

20 जुलाई को दक्षिणपूर्व रेलवे मेंन्स यूनियन के अध्यक्ष एम. सी. राय चौधरी ने घटना स्थल का अवलोकन करने के बाद इस संवाददाता को बताया कि उन्हें मिली जानकारी के अनुसार पचास से अधिक लाशें जंगल में जला दी गयी थीं. उन के अनुसार दुर्घटना में बुरी तरह क्षतिग्रस्त हुए सवारी गाड़ी के चार डिब्बों में 600 से अधिक व्यक्ति सवार थे. इन में से तीन डिब्बों का तो अस्तित्व ही नहीं रहा था. कितने अधिक शव लापता हैं इस का अनुमान इस तथ्य से भी लगाया जा सकता है कि सवारी गाड़ी के गार्ड शब्बीर हुसैन का शव 21 जुलाई की शाम तक नहीं मिल सका था, अलबत्ता उन के पुत्र अकबर ने पिता का मृत्यु प्रमाण पत्र प्राप्त करने के लिए काफी दौड़ धूप करने के बाद एक शव की टाँग को अपने पिता की टाँग बता दिया.

श्री राय चौधरी ने अपने एक वक्तव्य में कहा है कि इस प्रकार की भीषण दुर्घटनाओं से रेलवे प्रशासन की आँखें खुल जानी चाहिए और विलम्ब से ही क्यों न हो अब इस तथ्य को स्वीकार कर लेना चाहिए कि ये दुर्घटनाएं सुरक्षा नियमों की भारी अवहेलना के कारण हो रही हैं. और सारी कार्यप्रणाली को दुरुस्त किये बिना इन की पुनरावृत्ति नहीं टाली जा सकती. श्री राय चौधरी का आरोप है कि सारे देश में त्रुटिग्रस्त इंजनों को ले कर वक्त पर यात्रा पूरी करने का जो दबाव इंजन ड्राइवरों और अन्य कर्मचारियों पर डाला जाता है उस के भयावह दुष्परिणाम आप नागरिक भोग रहे हैं. एक प्रकार का अघोषित आपात्काल रेल प्रशासन में लागू कर दिया गया है.और जो इस का विरोध कर रहे हैं उन्हें बुरी तरह दंडित किया जा रहा है. रेलपांतों की स्थिति दयनीय है परंतु कर्मचारी उन पर रेलें दौड़ाने के लिए विवश हैं रेल मार्गों पर अराजकता दौड़ रही है. श्री राय चौधरी ने दुर्घटना की जाँचएक संसदीय समिति से कराने की माँग की है.

रेल प्रशासन ने बताया है मालगाड़ी का चालक चिरकुटे अभी तक लापता है. अब यह भी बताया गया है कि उस ने शराब पी रखी थी और नशे में ही वह गाड़ी को ले कर आगे बढ़ गया था.परंतु क्या उसी नशे की हालत में उस ने पेण्ड्रारोड स्टेशन पर गाड़ी के ब्रेक खराब होने का लिखित आवेदन दिया? बहुत सारे प्रश्न हैं जो अब तक अनुत्तरित हैं और अंत तक उन का कोई जवाब रेल प्रशासनन हीं दे पायेगा.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

'अपने आप भाग निकलो, वर्ना...'

असहिष्णुता, शोषण और दंभ पर टिका हुआ ब्रितानी समाज

नीलू दामले

दो जुलाई से ब्रिटेन में दंगे शुरू हुए. 20 जुलाई तक दंगे समाप्त नहीं हो पाये. ब्रिटेन के इतिहास में इतने भयानक दंगे कभी नहीं हुए हैं. बीस से ज्यादा शहरों में दंगों का फैलाव रहा है. आज तक होता यह रहा कि लंदन शहर तक ही दंगे सीमित रहे. ब्रिक्स्टन और साउथहॉल लंदन के हिस्से हैं. इन इलाकों में एशियाई अश्वेत लोगों की बस्ती है. यहां हमेशा दंगे भड़कते हैं. मार्च, 81 में ब्रिक्स्टन में हिंसा भड़क उठी. आज उस दंगे की सुनवाई के लिए स्कारमन आयोग काम कर रहा है. ब्रिक्स्टन दंगे के थोड़े दिन पहले साउथहॉल में काले गोरों के बीच हिंसा भड़क उठी थी. लेकिन जुलाई के दंगे लगभग सारे औद्योगिक शहरों में फैलते रहे. बर्मिंघम, लिवरपूल, शेफ़ील्ड आदि स्थानों पर दो हफ़्तों तक जातीय हिंसा होती रही. समाचारपत्रों में अब दंगों का सारा ब्योरा आया है, इस लिए अब दंगों का विश्लेषण अधिक महत्त्वपूर्ण है.

दंगों के मूल में जाने से पहले घटनाओं की तरफ़ एक बार निगाह डालना भी ठीक रहेगा. विश्व भर की साप्ताहिक पत्रिकाएं और समाचारपत्रों ने हिंसा का वर्णन विस्तृत रूप से किया है. हिंदुस्तान के समाचारपत्र अपने आप कुछ भी नहीं करते. वे पश्चिमी संवाददाता या समाचार एजेंसियों पर पूर्णरूपेण निर्भर हैं. विदेशी या देशी समाचारपत्र-पत्रिकाओं में जो भी आया है उसे जरा ध्यान से देखना होगा. सारे अखबारों ने कहने की कोशिश की है कि ये दंगे जातीय नहीं है, आर्थिक हैं. टैचर की अर्थनीति के कारण बेरोज़गारी बढ़ी है, आर्थिक संकट पैदा हुए हैं. जनता में हताशा, चिंता और क्षोभ है. उसी का नतीजा है यह दंगा. छिटपुट मात्रा में जातीय मुद्दे हो सकते हैं, लेकिन मूलतः कारण आर्थिक हैं. मेरी मान्यता है कि यह विचार सचाई से दूर है.

जो भी बातें समाचारपत्रों के जरिए पाठकों के सामने आयी हैं उन से कई चीजें साफ़ हो जाती हैं. जहाँ भी दंगा हुआ सारी जनता सरकार पर नहीं टूट पड़ी. यदि यह दंगा केवल आर्थिक कारणों की वजह से होता तो काले श्वेत नागरिक, युवक एक साथ हो कर कहीं पुलिस के खिलाफ़ या सरकारी संपत्ति के खिलाफ़ हिंसा करते, आग लगाते, जैसा कि बहुत ही कम हुआ है. आम तौर पर हुआ यह है कि काले लोगों की पिटाई हुई और प्रतिशोध की भावना से कालों ने फिर श्वेत नागरिकों को पीटा. केवल एशियाई या केवल ब्रितानी नागरिकों के दूकान या घर पर हमला क्यों होता है? हमला करने वालों का दिमाग गरम होने का कारण आर्थिक हताशा जरूर हो सकती है. फिर भी वे आपस में क्यों झगड़ा करते हैं? सारे एक साथ हो कर टैचर सरकार के खिलाफ़ आवाज क्यों नहीं उठाते? पुलिस के विरोध में जनभावना तीव्र है, यह बात सही है, लेकिन उस के कारण देखने लायक़ नहीं हैं. गोरे हों या काले हों यह मानते हैं कि वे आपस में मामला 'निपटाने' में सक्षम हैं.

पुलिस का बीच में आना ठीक नहीं है. गोरा युवक कहता है कि टैचर सरकार बेकार की बहुजातीय समाज की बात चला रही है. अब केवल युवक ही कालों को खदेड़ कर सवाल हल करेंगे. दूसरी तरफ़ काले युवक कहते हैं कि उन्हें पीटने में ही पुलिस आस्था रखती है, इस लिए पुलिस का मुकाबला करना चाहिए. आपसी द्वेष के मुद्दे पर दोनों समाज सरकार विरोधी हैं. जातीयता को नकारना ठीक नहीं होगा, क्यों कि वह सचाई है.

इन दंगों से थोड़े ही दिन पहले मैं ने इसी सवाल पर अध्ययन करने हेतु यूरोप यात्रा की थी. वहां जो भी मैं ने देखा सुना उस से ब्रिटेन में फैले जातिवाद की बात समझ में आयी. ब्रितानी लोग आम तौर पर चाहते हैं कि काले लोगों को ब्रिटेन के बाहर कर दिया जाये, कारण कि वे ही आर्थिक समस्या और हताशा के लिए जिम्मेदार हैं, वे गंदे हैं, वगैरह. बाहर करना तो है, लेकिन ईदी अमीन की तरह नहीं. पीड़ा और कष्ट दे कर ऐसी स्थिति पैदा की जाये कि काले लोग अपने आप ही भाग निकले, यह सरकार की और समाज की नीति है.

जब ब्रिटेन का आर्थिक संकट विकट होने लगा तब से यह प्रक्रिया जोरों से चली है. राजनीति में सड़न इतनी फैल गयी है कि अब वहाँ उदारता करीबन समाप्त हो चुकी है. उदार नैतिक मूल्य कहीं नगण्य मात्रा में हों भी तो उन का कोई प्रभाव राजनीति में नहीं है. वैसे ब्रितानी लोगों में दंभ और दक़ियानूसी एक अर्से से है ही. इसी लिए जनतंत्र और मानवता का बुरका ओढ़े हुए ये लोग अमानवीय व्यवहार करते आये हैं. ईदी अमीन मूर्ख था. उस के व्यवहार में एक मासूमियत भी थी. अत्याचार का झूठा समर्थन सब ने नहीं किया.

हम अत्याचार करना चाहते हैं, ऐसा कह कर वह जो चाहे करता था. ये गोरे लोग अलग किस्म के हैं. मारेंगे, पीटेंगे, खदेड़ डालेंगे, लेकिन अलग ढंग से : जनतंत्र का नकाब ओढ़े हुए. आज दंगे हो रहे हैं. अचरज की कोई बात इस में नहीं है. ऐसा होना ही था. एशियाई या काले लोगों को इस कदर कोने में ठूंस दिया जा रहा था कि एक दिन उन्हें हिंसा पर उतारू होना ही था. फिर गालियाँ वही खायेंगे, क्यों कि गोरे लोग एकदम शांत हैं और काले लोग हिंसा पर उतारू हैं, ऐसा बताना आसान हो जाता है.

यह कोई मनगढ़ंत बात नहीं है. यह सचाई है, जो छिपायी जाती है.

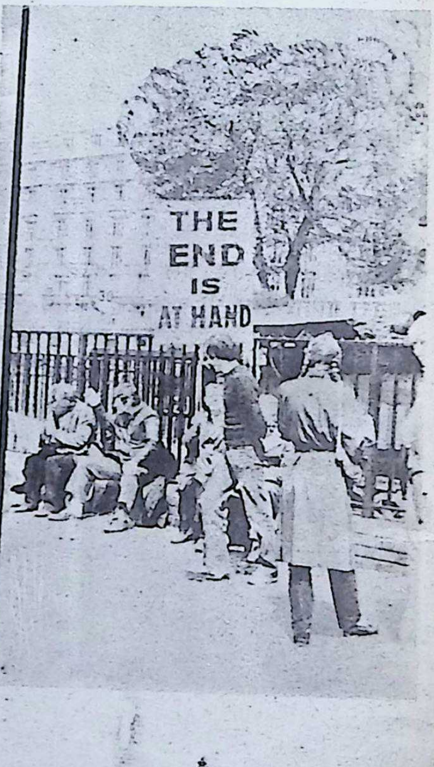

हाइड पार्क में : किस की समाप्ति?

डैनी मूर एक अफ़्रीकी सामाजिक कार्यकर्त्ता हैं, जो पेकहैम में काले लोगों के बीच काम करते हैं. घंटों तक उन से बातचीत हुई. उन्हीं का कहना है कि मेरी पैदाइश यहाँ की है. मेरे दादा, परदादा यहाँ गुलाम के रूप में लाये गये. आज भी क़रीब वही जीवन है. सर्दी के दिन आते हैं, तब घर में गरमी रखने के लिए बिजली या तेल का पैसा देना मुश्किल हो जाता है. कहाँ से दें हम पैसा? हमें कोई नौकरी नहीं

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

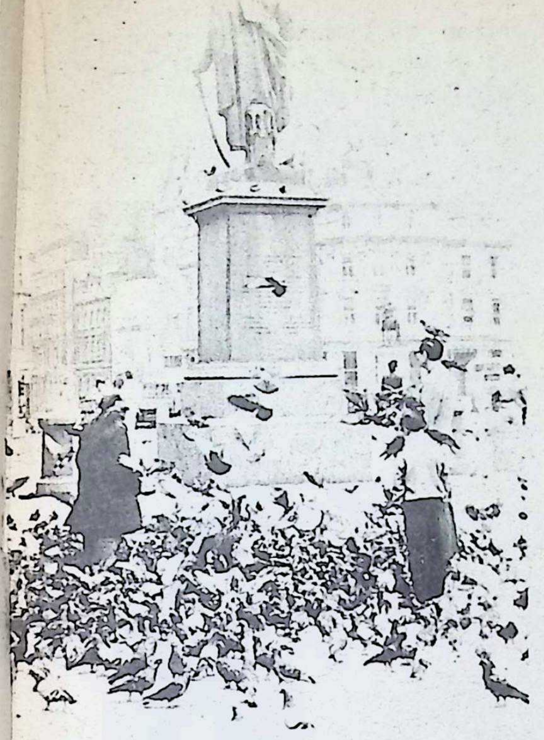

ट्राफ़लगर चौक : कबूतर को दाने, लेकिन कालों को. . .?

देता. कहते हैं हमें अंग्रेज़ी ठीक नहीं आती. कहते हैं कि हम ठीक व्यवहार नहीं करते. इन अंग्रेज़ों को लगता है कि हम दो ही काम कर सकते हैं—एक बैल की तरह मेहनत, दूसरा गाना. आज भी वही चल रहा है. रहने के लिए घर भी नहीं मिलता. सरकारी आवास ऐसा मिलता है जहाँ आदमी क्या जानवर भी रहना पसंद नहीं करेगा. आप चलिए मेरे साथ. हमारे वेस्ट इंडीज़ के साथी कैसे रहते हैं, दिखाता हूँ. एक घर में 10 या 20 लोग. गाँव से लड़के पढ़ाई के लिए आते हैं. कहाँ रहेंगे? हमारे घर. बस, भीड़ बढ़ती है. फिर यही गोरे लोग कहते हैं कि हम गंदे हैं. .

डेप्टफ़ोर्ड : आनंदोत्सव मनाते समय 11 कालों की हत्या, जहाँ फूल लटकाये गये हैं.

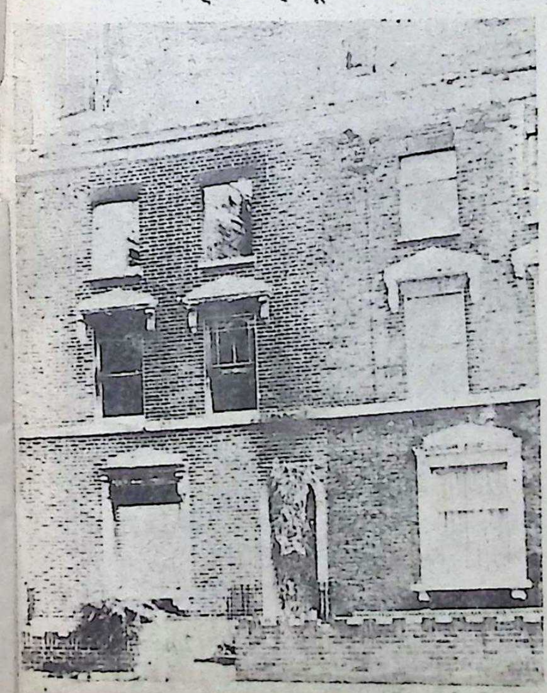

डैनी का कहना भी ठीक था. इंग्लैंड में क़रीबन सारे घरों की खरीद फ़रोख़्त एजेंटों के ज़रिए होती है. इन बिचौलियों के हाथ में ख़रीद और बिक्री होती है. इन्हें लोग कह रखते हैं कि जहाँ तक संभव हो काले आदमी को घर नहीं देना. भारतीय मूल के लोगों को मिलता है, क्यों कि डॉक्टरी या तत्सम मध्यवर्गीय काम में भारतीय आदमी वहाँ पहुँचता है. गुजरात या महाराष्ट्र से जो भी लोग वहाँ गये हैं अपने आप में वे खुशहाल हैं. शांतिप्रिय हैं, इस लिए उन्हें स्वीकार किया जाता है. लेकिन मज़दूरी मेहनत करने वाला सिख, बंगलादेशी, या पाकिस्तानी के लिए जगह ढूंढ़ना मुश्किल होता है. अफ़्रीकियों को तो जगह मिलना माने सौ में से एक मौका.

कमीशन फ़ॉर रेशियल इक्वॉलिटी (सी. आर. ई.) एक स्वायत्त संस्था है, जो जातीय अन्याय की जाँच करती है. नवंबर, 81 में सी. आर. ई. ने दो ऐजेंसियों की जाँच की सूचना एकत्रित करते समय पता किया कि अपने घरों की बिक्री करने वाले मालिकों में 50 प्रतिशत से अधिक ने यह कह घर दिया या कि उन का घर किसी काले व्यक्ति को नहीं मिले. एक समय पर कुल 40 मकान किराये पर दिये गये और उस में केवल 4 काले परिवारों को घर मिले. सी. आर. ई. ने इस बात पर कार्रवाई करने की कोशिश की है. लेकिन यदि मालिक ही अपना घर काले आदमी को नहीं देना चाहता तो आगे क्या हो सकता है?

ब्रिटेन में आज भी काले आदमी को उस के चमड़े के रंग के कारण या उस की तीसरी दुनिया की पैदाइश के कारण कष्ट उठाने पड़ते हैं. मौक़े नकारे जाते हैं. एक है टॉटनहैम क्लब. उस में कई काले नागरिकों को प्रवेश नकारा जाता है. 80 के अक्तूबर में इस बात को उठाया गया. अब जाँच जारी है. एक काले वर्ण की स्त्री ने लंदन की एक फ़ैशनेबुल दूकान में नौकरी करना चाहा. दूकान के मालिकों ने उन्हें फ़ोन पर पूछा, 'क्या आप श्वेत हैं, या काली हैं?' महिला ने पूछा, "क्या किसी रंग विशेष पर नौकरी निर्भर है?' जवाब आया, 'ज़रूर. दूकान में कोई काले रंग की स्त्री कर्मचारी होने पर हमारे ग्राहक कम हो जाते हैं.' महिला ने न्यायालय से न्याय माँगा. औद्योगिक न्यायालय ने दूकानवालों को दोषी पाया. दूकान ने महिला को 100 पाउंड का मुआवज़ा दिया, लेकिन नौकरी नहीं दी. एक और घटना. जिस नटिंगहम में अब की बार दंगे हुए हैं वहीं की बात है. एक नौकरी के लिए एक उद्योग में प्रार्थनापत्र आये थे. उन प्रार्थनापत्रों का सर्वेक्षण सी. आर. ई. ने किया. पाया गया कि 103 में से सारे कालों के प्रार्थनापत्रों को अस्वीकार किया गया और गोरे प्रत्याशियों को ही साक्षात्कार के लिए बुलाया गया. ऐसी अनगिनत घटनाएँ होती रहती हैं, जिस में से कुछ ही जाँच के लिए आती हैं. अख़बारों में कुछ भी नहीं छपता.

जितना हो सके नौकरी नकारी जाती है; कहीं मिल भी जाती है तो कम वेतन पर. काम और शिक्षा का स्तर वही जो और ब्रितानी का, लेकिन पद और वेतन कम. तरक्की के रास्ते भी क़रीबन बंद ही रहते हैं. न्यायालय में जो भी बातें आयी हैं उन से यह पता चलता है कि आम गोरा मालिक काले कर्मचारी को तरक्की देना नहीं चाहता, कारण उस से गोरे लोगों पर अच्छा असर नहीं पड़ता. काले आदमी के नीचे हमारे गोरे कर्मचारी काम नहीं करना चाहते. इस से अनुशासन और उत्पादन पर ख़राब असर होता है. काला आदमी माने अविकसित मानव: पिछड़ा हुआ. इसी लिए वह कभी गोरे आदमी के समकक्ष बन ही नहीं सकता. यह धारणा लोगों के मन में पक्की है. बैरिस्टरी जहाँ होती है उस इनर टेंपल में भी वही हाल . एक काले बैरिस्टर ने कहा, 'हम काम करने लायक़ हैं, यह साबित करने के लिए हमें ज़्यादा मेहनत करनी होती है. उन के सारे 'एटीकेट्स' वग़ैरह मानने होते हैं.' बार काउंसिल में फैले जातिवाद के कारण अब लिंकन इन में 7 या 8 काले बैरिस्टरों के अलग कमरे हो गये हैं. पता नहीं क्यों लोग बैरिस्टरी का अभिमान रखते हैं?

क़ानून की बात आ ही गयी है तो 'नेशनलिटी बिल' पर विचार करना भी ठीक होगा. अब नागरिकता विधेयक विचाराधीन है. इस मसविदे में ग़ैरब्रितानी लोगों को ब्रितानी नागरिकता प्रदान करने की व्यवस्था है. अफ़्रीका और एशिया के जिन नागरिकों के पास ब्रितानी नागरिकता नहीं है उन को नागरिकता प्रदान करने की प्रणाली इस मसविदे में है. इस मसविदे की बारीकियों में जाना, स्थानाभाव के कारण, मुश्किल है. लेकिन विधेयक के नतीजे के बारे में अनुमान लगाने और काले क़ानून जानने वालों में एकमत है. ब. कावरी से मैं ने किंग बेंच वॉक में बातचीत की. उन का कहना था कि जितने भी काले रंग के लोग हैं उन्हें देरसवेर इस क़ानून की तहत तकलीफ़ उठानी पड़ेगी, ब्रिटेन छोड़ के भागना पड़ेगा. कई भारतीय ऐसे हैं जिन के पास आज भी नागरिकता है. ब्रितानी नागरिकता न स्वीकारने पर उन्हें देश छोड़ना पड़ेगा. लेकिन भारतीय या और किसी भी तीसरी दुनिया के नागरिकों के पास ब्रितानी नागरिकता आने पर भी उन की

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

समस्या हल नहीं होगी. उदाहरण के तौर पर पाकिस्तानी मूल के ब. कादरी ने मसविदे की चंद बातें कहीं. मसविदे के अनुसार हर नागरिक का चरित्र (करेक्टर) अच्छा होना ज़रूरी है. खराब चरित्र के कारण उस की नागरिकता कभी भी समाप्त हो सकती है. कादरी ने कई मुक़द्दमें इस मुद्दे पर हारे हैं. न्यायालय में कुछ विशिष्ट मुक़द्दमों में सरकार की तरफ़ से कहा गया कि अभियुक्त का चरित्र ठीक नहीं है. क्या अभियुक्त ने धोखाधड़ी की है? चोरी की है? नशीले द्रव्य का धंधा किया है? सरकार का जवाब था, 'हम इस प्रश्न का जवाब देने को बाध्य नहीं है. अभियुक्त का चरित्र खराब है, यह बात सरकार को कैसे मालूम हुई? इस प्रश्न का जवाब भी गृह-कार्यालय ने नहीं दिया. उस का कहना है कि सुरक्षा और गोपनीयता के लिए खराब चरित्र की सूचना देने वाले मुखबिर का अतापता नहीं बताया जाएगा. न्यायालय ने सरकार की इन बातों पर विश्वास किया और उन अभियुक्तों को देश के बाहर कर दिया. ऐसी बहुत सारी छोटी मोटी चीज़ें बिल के नतीजे के रूप में सामने आ सकती हैं, जिन के कारण काले नागरिकों को दूसरे नहीं बल्कि दसवें दर्जे की नागरिकता महसूस होगी.

अप्रैल में एक बड़ा घोटाला अखबारों में छपा. उस के मुताबिक़ काले लोगों के पारपत्र पर एक विशेष नंबर लिखा जाता है. उस संख्या का अर्थ पारपत्रधारक की समझ में नहीं आता. लेकिन अफ़सर कुछ अलग अर्थ इस संख्या से निकालते हैं. एक काला आदमी जब कुछ सुविधाओं की पूछताछ के लिए एक कार्यालय में पहुँचा तब उसे सहूलियतें नकारी गयीं. पूछने पर बताया गया कि उस के पारपत्र के अनुसार उस की तीन पत्नियाँ हैं और यह क़ानून के खिलाफ़ है. उस काले नागरिक को पता ही नहीं था कि कब उस के पारपत्र पर यह सूचना लिखी गयी थी. शासकीय स्वास्थ्य योजना के अंतर्गत अब कोई भी सेवा देने से पहले काले नागरिक के पारपत्र की माँग होती है.

कई टैक्सी ड्राइवरों से मुलाकात हुई. उन के ऊपर होने वाले अत्याचारों की कहानी सुन कर ही मैं ने अपनी ज़िम्मेदारी पर उन से मुलाकात का समय निश्चित किया था. इन में पाकिस्तानी, बंगलादेशी और भारतीय मूल के लोग थे. शिकायत एक ही थी. रात के समय गोरे युवकों ने उन को लूटा, पैसे छीन लिये और बीयर के कनस्तरों से उन को पीटा. जब शिकायतें पुलिस में दर्ज हुईं तब या तो कुछ कार्रवाई नहीं हुई और अगर कुछ हलचल हुई भी तो किसी को कोई दंड नहीं दिया गया. सारे ड्राइवरों का कहना था कि अब जीना दुश्वार हो गया है. जब उन की पिटाई होती है तो अन्य नागरिक या पुलिस उन की सहायता नहीं करतीं; उल्टे होता यह है कि थाने में पुलिस वाले कहते हैं, 'तुम यहाँ आये ही क्यों हो? यह देश छोड़ कर भाग क्यों नहीं जाते?' हम ने उन ड्राइवरों से कहा कि वे एक ज्ञापन हमें दें. तब वे इतने हड़बड़ा गये कि अपना नाम और पता बताने से भी उन्होंने इनकार किया. 'हम आप को नामधाम बता देंगे. आप उस पर कुछ लिखेंगे. बाद में यहाँ हमारी पिटाई होगी. पुलिस हमें इस क़दर तकलीफ़ देगी कि उन की बात हमें माननी ही पड़ेगी. आप के दिमाग में 'बॉबी' की एक अच्छी प्रतिमा बन गयी है. बग़ैर हथियार लंदन का बॉबी काम करता है. यह झूठ है. हमारी थाने में जो पिटाई होती है वह आप लोग नहीं जानते.' नतीजा यह रहा कि इन ड्राइवरों ने कोई भी क़ानूनी बयान नहीं दिया. एक ने तो कहा, 'कल आप हमारे पास आते हैं तो हम कहेंगे कि हम ने तो यह बयान नहीं दिया है.'

लोग कहते हैं कि एक ज़माने में लंदन विश्व भर का सब से सुरक्षित शहर था. हमारा अनुभव कुछ अलग था. एक भारतीय स्त्री ने बताया कि अब शाम को वह ट्यूब से सफ़र नहीं करती. पुरुषों ने भी कहा कि अब रात बेरात शहर में घूमना खतरे से खाली नहीं है. कब 'स्किन हेड' आ कर पीटेंगे, यह कहा नहीं जा सकता. 'स्किन हेड' (गोरे गुंडे) होते हैं 15–20 साल की उम्र के लड़के. विचित्र ढंग से वे अपने बाल सँवारते हैं. कभी कभी इतनी हजामत करते हैं कि उन का सर गंजा लगता है. सर और बाल पर अनेक रंग पोते जाते हैं. कपड़े एकदम अजीबोग़रीब होते हैं. 10–15 से 100–200 की टोलियों में घूमते हैं. काले आदमी दिखाई देने पर टूट पड़ते हैं. कालों की पिटाई, उन की दूकान का विध्वंस, उन की बस्ती में आतंक फैलाना, यही काम ये गुंडे करते हैं. उन को देखते ही काले नागरिक छिप जाते हैं, भागते हैं.

इन के करतूत भयानक हैं. मार्च में डेप्टफ़ोर्ड में एक भयानक घटना हुई. एक अफ़्रीकी घर में आनंद मनाया जा रहा था. लोग गा रहे थे, नाच रहे थे. देर रात को यही 'स्किन हेड' आये. पेट्रोल बम फेंक कर उस घर को आग लगायी. काले लोगों को बाहर आने का मौक़ा नहीं दिया गया. उस घर के कुल 11 सदस्य भुन कर खाक हुए, मर गये. पुलिस ने इस भयानक घटना की जाँच ठीक तरह से नहीं की है. जिन्होंने उन गोरे गुंडों को पेट्रोल बम फेंकते देखा उन पर दबाव डाला जा रहा है. डरा धमका कर बयान वापिस लेने को पुलिस मजबूर कर रही है. ब्रितानी अखबारों में राजकुमार चार्ल्स की चर्चा इस ढंग से होती है कि उस के विवाह के बाद दुनिया बदलने वाली है. लेकिन डेप्टफ़ोर्ड की घटना का ज़िक्र करने के लिए ब्रितानी अखबारों के पास न समय है, न कोई जगह है.

इस से भी ज़्यादा भयानक घटना साउथहॉल की है. सूद नाम के स्कूली छात्र को नेशनल फ्रंट के समर्थकों ने दिन दहाड़े पकड़ लिया. पत्ती से उस के बदन पर घाव किये, जिस से बेचारा सिख लड़का खून से लथपथ हो गया. पत्ती से बदन पर एन. एफ़. अक्षर अंकित कर के ये फासीवादी संगठन के कार्यकर्त्ता भाग गये. इस घटना पर काफ़ी हंगामा हुआ. लेकिन पुलिस की चाल ही उल्टी. पुलिस ने सूद को धमका कर बयान माँगा कि उस ने अपने ही हाथों से स्वयं को ज़ख्मी किया. सूद ने इनकार किया. अब भी पुलिस ने इस मामले में कोई कार्रवाई नहीं की है. साउथहॉल में इस बात को ले कर प्रदर्शन हो चुके हैं और जुलूस निकाले जा चुके हैं.

'स्किन हेड' गुंडा क़िस्म के ग़ैरज़िम्मेदार युवक हैं. इन का रिश्ता जर्मनी में चल रहे नये नात्सीवाद से है. जर्मनी से जो नयी फासीवाद की लहर पैदा हुई वह ब्रिटेन में इन गोरे गुंडों ने स्थापित की है. लेकिन वर्ण द्वेषी इनोक पावेल से भी इन का नाता है. पावेल का कोई विशेष राजनैतिक दल या मत नहीं है. काले लोगों को खदेड़ना यही उस का कार्यक्रम है और उस के

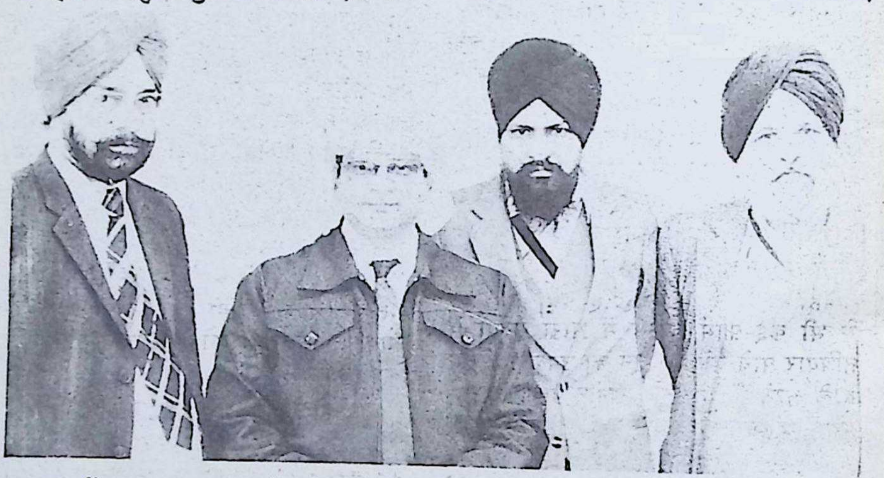

गुरु सिंह सभा, साउथहॉल के पदाधिकारी गुरदीपसिंह, प्यारासिंह, बंतासिंह और संतासिंह: 'हमारी सरकार हम पर अन्याय करती है'

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

लिए वह किसी भी दल या गुट से हाथ मिलाने के लिए तैयार रहता है. उस का जो फासीवादी संगठन है उस का ही नाम 'नेशनल फ्रंट' है. इन गुटों के अलावा भी कई जातीय संगठन ब्रिटेन में उभर आये हैं. उन में एक 'ब्रिटिश मूव्हमेंट' (बीएम) है. इन तमाम लोगों की मान्यता है कि काले लोगों की वजह से ही ब्रिटेन में समस्याएँ पैदा हुई हैं. अब इन फासीवादी संगठनों के साथ संसद के सदस्य खुले आम मिल गये हैं. सत्तारूढ़ दल के (कंज़रवेटिव पार्टी) **सर रोनाल्ड बल** के नेतृत्त्व में अब एक गुट संसद में बना है, जिस का नाम है **इमिग्रेशन ग्रुप**. बढ़ती हुई काली जनसंख्या का मुक़ाबला करना इस गुट का काम है. जातिवाद की जड़ें काफ़ी फैली हुई हैं और इसी लिए आतंक भी.

आज समाचारपत्र कह रहे हैं कि यह हिंसा, दंगा जातीय नहीं है. फिर दंगा उन्हीं जगहों पर क्यों फैला है जहाँ काले लोगों की संख्या ज़्यादा है? एक एक जगह को लीजिए. मिड्लैंड्स में हफ़्ता भर हिंसा होती रही. ब्रितानी आंदोलन का यह गढ़ माना जाता है. पुलिस ने जब हत्यारे संबंधी क़ानून के तहत बीएम के सदस्यों के घर में छापा मारा तब भारी अस्त्र बरामद हुए, जिन में बम, पिस्तौल, रिवॉल्वर और स्टेन गन मिले. उन के घर और कार्यालय में जातिवादी पर्चे और किताबें मिलीं, जिन के ज़रिए ये लोग अपना वंशवादी विषैला प्रचार करते थे. आज जिस **बर्मिंगहम** में दंगे हो रहे हैं वहाँ काफ़ी एशियाई रहते हैं. उसी बर्मिंगहम में भी कई फ़ार्म हाउस में भारी संख्या में हथियार पाये गये हैं, जिन का उपयोग बीएम वाले करते हैं. **वूलविच, मनोर पार्क, साउथ-हॉल, लायसेस्टर, लिवरपूल** में भी दंगे हो रहे हैं. इन सारी जगहों पर काले लोग बड़ी मात्रा में हैं. इन के घरों, दूकानों पर 1979 और 1980 में अनगिनत बार पथराव हुए हैं, पेट्रोल बम फेंके गये हैं. इन के परिवार के सदस्यों को पीटा गया है. जिस दूकान के काँच पर जाली लगी हुई हो उसी को किसी एशियाई की ही दूकान मान लेना चाहिए. आज से ठीक एक साल पहले मनोर पार्क में अख़्तर अली बेग की हत्या हो गयी. जिन के ऊपर मुक़द्दमा चला उन के घर नात्सी चिन्ह स्वस्तिक और 'एन. एफ़.' की सामग्री पायी गयी. एक अभियुक्त के ख़िलाफ़ कुछ ख़ास सबूत न मिला. उसे छोड़ा गया. दूसरे पर आरोप सिद्ध हुआ, लेकिन जातीयता का ज़िक्र नहीं किया गया. वूलविच में एक सिनेमा घर में 'एन. एफ़.' वालों ने आतंक फैलाया और कालों की पिटाई की. लंदन के **रीडली रोड मार्केट, ईस्ट एंड, साउथ-हॉल** के एशियाई दूकानों को दिसंबर, 1980 में तोड़ दिया गया. आज जिस **मैंचेस्टर** में आग भड़क उठी है उसी मैंचेस्टर में हमेशा एशियाई लोगों को सताया गया है. नवंबर, 1980 में एशियाई घरों के शीशे तोड़ दिये गये, घरों पर 'एन. एफ़.' अक्षर अंकित कर दिये गये. मोटरों और घरों पर भद्दी भद्दी बातें लिखी गयीं और चित्र अंकित किये गये. **प्रेस्टन, बलकबर्न, बोल्टन** और **चार्ली** में नवंबर-दिसंबर में इतना आतंक था कि एशियाई स्त्रियों ने पुलिस को ज्ञापन दे कर कहा कि वे सुरक्षित नहीं हैं.

चंद विभाग छोड़ कर क़रीब क़रीब हर बस्ती में एशियाई या अफ़्रीकी लोग असुरक्षित अनुभव कर रहे हैं. अनगिनत ढंगों से उन को सताया जा रहा है. कई लोग तो इतने तंग आये कि फासीवादियों की भद्दी गालियाँ और धमकियाँ सुनना बंद करने के लिए उन्होंने अपने नाम टेलीफ़ोन सूची से हटवा दिये. पुलिस का रवैया भी हमेशा ख़राब रहा है. काले लोग जब प्रदर्शन या जुलूस के लिए इजाज़त माँगते हैं तब नकार दिया जाता है. 'गोरे गुंडों' को बढ़ावा दिया जाता है. जब कोई वारदात होती है तो गिरफ़्तारी का शिकार कालों को होना पड़ता है. कई दिलचस्प बातें सामने आयी हैं. **इरोल मैंडन** नामक अफ़्रीकी लड़के को पुलिस ने ख़ूब धमकाया और बयान माँगा, 'मैं ने मेरी ही वस्तु चोरी की.' यह अजीब घटना जून, 1980 की है. मैंडन एक अच्छा कलाकार है. अपने घर वापस लौटते समय ख़रीदी हुई दो मॉडल कारों की चोरी का आरोप लगा कर पुलिस ने उसे सताया. आरोप साबित नहीं हो पाया, लेकिन यदि मैंडन पुलिस के धमकाने को मानता तो 1979 में एक सर्वेक्षण में पाया गया कि 70 प्रतिशत काले लोगों को पुलिस केवल धमकाया करती है; कोई मुक़द्दमा वग़ैरह नहीं किया जाता.

आज दो तीन सालों से यह सिलसिला तेज़ी से जारी है. एशियाई नागरिक अपनी सरकार के प्रति रुष्ट हैं, ख़ास तौर पर भारतीय. साउथ-हॉल के गुरुद्वारा में मैं गया था. गुरुद्वारा के पदाधिकारियों से बात हुई. रुख़ कड़ा था. 'आप जा कर लिखिए कि हमारी सरकार हमारा ही काम नहीं करती है. जब देश पर आक्रमण हुआ तब हम लोगों ने पैसा भेजा. हम हमेशा सिख रहेंगे, हिंदुस्तानी रहेंगे. लेकिन जब ये 'स्किन हेड्' हम को पीटते हैं, ब्रितानी पुलिस हम पर अन्याय करती है तब हमारी सरकार हमें कोई मदद नहीं करती. हर उच्चायुक्त को हम यहाँ बुलाते हैं और अत्याचार के बारे में बताते हैं, लेकिन कोई कुछ नहीं करता.'

हिंदुस्तानी लोगों का कहना है कि उच्चायोग के अफ़सर और कर्मचारी इसी बात से चिंतित रहते हैं कि उन्हें कैसे हमेशा हमेशा के लिए लंदन रहने का मौक़ा मिले. उन्हें अपने देशवासियों की कोई चिंता नहीं रहती. लंदन में रहना और अंग्रेज़ बनने की कोशिश करना यही उन का काम बन जाता है. पत्रकारों का भी वही हाल है. लंदन छोड़ना न पड़े इस लिए हमेशा अंग्रेज़ी और अंग्रेज़ीयत की हामी भरना इसी में वहाँ के भारतीय पत्रकारों की दिलचस्पी रहती है. काले लोगों पर अत्याचारों की कहानियाँ या समाचार बराबर भेजने पर अंग्रेज़ सरकार नाराज़ होगी और हमें लंदन छोड़ना पड़ेगा, यही उन की चिंता होती है. पत्रकार हो या दूतावास के कर्मचारी, अंग्रेज़ीयत का भूत, अंग्रेज़ के बड़प्पन का भूत उन के दिमाग़ पर हमेशा सवार रहता है. इस भावना से मिलताजुलता अनुभव मैंने भी किया. भारतीय दूतावास और पत्रकार दोनों का व्यवहार हमेशा ख़राब रहा है. उन्हें एक ही चीज़ में आस्था रही—अंग्रेज़ कैसे ख़ुश रहे.

इस स्थिति का नतीजा है आज का दंगा. साउथहॉल का सिख भाई हो या ब्रितानी

जो बेरोज़गार हैं

इनॉक पावेल, पावेल सहयोगी और तमाम गोरे लोगों का कहना है कि इंग्लैंड की बेरोज़गारी का कारण काले लोग हैं. कई आँकड़े दिये जाते हैं. आज इंग्लैंड की बेरोज़गारी 30 लाख है और काले लोग भी 30 लाख हैं. कालों को हटाओ, बेरोज़गारी मिट जायेगी, यह तर्क तमाम गोरे लोग देते हैं.

इस तर्क में अंश मात्र भी सच्चाई नहीं है.

इंग्लैंड में 1980 के अंत तक एक साल में बेरोज़गारी 16.4 प्रतिशत बढ़ी. इसी काल में अश्वेतों की बेरोज़गारी 25.8 प्रतिशत बढ़ी है; यानी समूची बेरोज़गारों में कालों का अनुपात ही ज़्यादा है.

ब्रिक्स्टन का उदाहरण हम लें. मार्च, 1981 में वहाँ आंशिक दंगे हुए थे. ब्रिक्स्टन में अश्वेतों की संख्या काफ़ी है. वहाँ इस साल गोरों की बेरोज़गारी 2.8 प्रतिशत से बढ़ रही है और कालों की 5.2 प्रतिशत; यानी काले बेरोज़गार 2 गुना ज़्यादा हैं. इन में भी युवा वर्ग की अवस्था और भी ख़राब है. लैंबेथ में कुल 530 युवकों ने काम के लिए पंजीकरण किया. उन में 269 यानी 52 प्रतिशत अश्वेत थे. यह बात 1979 की है. लेकिन 1980 में बेरोज़गारी कम हुई. नौकरी माँगने वालों की संख्या 416 हुई. फिर भी काम माँगने वाले अश्वेत युवकों का अनुपात बढ़ कर 57 प्रतिशत हो गया.

लैंबेथ और ब्रिक्स्टन लंदन शहर की इकाइयाँ हैं. जानकारों का कहना है कि पता उन्हीं का लगता है जो नौकरी के लिए अपना नाम दर्ज करते हैं. कई अश्वेत युवक नाम भी दर्ज नहीं करते, इस लिए काले बेरोज़गारों का आँकड़ा 57 प्रतिशत से काफ़ी बड़ा हो सकता है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

गियाना का बंधु हो उन का कहना है, 'हमारी यह तीसरी पीढ़ी है. हम यहां पले हैं. पंजाब और गियाना से हमें लगाव जरूर है, लेकिन हम ने और हमारे बच्चों ने केवल पर्यटक की हैसियत से अपने देश देखे हैं. हमारा जो भी है यहीं है. हम लोगों ने मेहनत कर के अपनी जिंदगी बनायी है. ब्रितानी सरकार और लोग हमें खदेड़ना चाहें भी तो हम कहां जा सकते हैं?' ब्रिटेन खदेड़ना चाहता है: ये कहीं जा नहीं सकते, न चाहते हैं. उन की सरकार भी उन की देखभाल नहीं करना चाहती. फिर ये लोग करेंगे भी क्या?

'एशिया मैगजीन' के एक संपादक एलेन स्टिंटन से बातचीत हुई. मैं ने मार्टिन लूथर किंग और गांधी जी के दर्शन की याद दिलायी. उन का कहना था, 'आप की बात सही है. गांधी जी का रास्ता ही सही है. लेकिन वह अब नहीं रहे. कौन है हमारा मार्ग दर्शन करने वाला? हम शांतिमय रास्ते से जरूर जाना चाहते हैं. लेकिन सारा समाज और पुलिस हमें नष्ट करने निकले हैं, तो हम क्या करें? अब हमें प्रतिकार करना होगा. जब कोई काला आदमी किसी गोरे पुलिस को पीटता है तब नतीजा साफ़ है—उस काले की जबरदस्त पिटाई और मुक़द्दमा. ये दोनों चीज़ें तो वैसे ही कभी न कभी होने वाली ही थीं, तो कम से कम एक झटका देने का सुख तो काले आदमी को मिला. इस से उस का आत्मविश्वास बढ़ता है. आज जिंदा रहना है तो आत्मविश्वास से काम लेना होगा. . . .अब काला या तीसरी दुनिया के लोग चुप नहीं रहेंगे. अब प्रतिकार किया जायेगा.'

लंदन की गलियों में घूमते युवकों को देख कर इस भावना का परिचय जरूर मिलता है. युवा वर्ग के ये सदस्य, सिवाय चमड़ी के रंग के, पूरे ब्रितानी हैं. हाथ में कोका या पेप्सी कोला: बदन पर पश्चिमी कपड़े, वगैरह. इन का कहीं और जाना मुश्किल ही है, इसी लिए अब यही युवक बदले की इच्छा रखते हैं. एक घटना इस भावना की परिचायक है. लंदन के पेकहम में गोरे गुंडों ने एक अफ़्रीकी युवक को जान से मार डाला. यह सूचना मिलने पर अफ़्रीकी युवकों की एक टोली प्रतिशोध की भावना से बाहर निकली. उन 'स्किन हेड्' की तलाश में श्वेत लोगों के घर और दूकान उन्होंने तोड़ डाले. ब्रिक्स्टन, साउथहॉल में अब पुलिस का काम मुश्किल हुआ है. उन्हें ही मार खाना पड़ता है.

हिंदुस्तानियों में महाराष्ट्र और गुजरात के नागरिक ब्रिटेन में बसे हैं. दोनों खुशहाली में हैं. अच्छी नौकरियां और व्यापार चलाते हैं. झगड़ने की या संघर्ष करने की हिम्मत उन में नहीं है. हम जब टहलते थे तब कई वेतनभोगी मराठी और दूकानदार पटेल हम से पूछते थे कि अब हिंदुस्तान में कहां पूंजी लगाना अच्छा है. धीरे धीरे वहां से भाग निकलने की वे सोच रहे हैं. लेकिन साउथहॉल के सिख बंधु लड़ने की इच्छा रखते हैं. वे लंदन नहीं छोड़ेंगे, क्यों कि उन्होंने लंदन में ही एक पंजाब का निर्माण किया है. बंगलादेश की हालत इतनी खराब है कि वहां के लोग भी अपने देश नहीं लौट सकते. उगांडा वगैरह जगहों से आये गुजरातियों की हालत खराब है. उन्हें न ब्रिटेन स्वीकार करेगी न उन्हें भारत पसंद होगा. भारत उन में से कइयों ने देखा भी नहीं होगा. राष्ट्रीयता क़ानून के बाद उन्हें पता नहीं कौन से संकट का सामना करना पड़ेगा. अफ़्रीकी लोग देश छोड़ने की सोचते भी नहीं.

विख्यात हाइड पार्क में आज कल स्पीकर्स कॉर्नर पर अफ़्रीकियों का क़ब्ज़ा है. हर रविवार तीन या चार काले नेता वहां भाषण देने आते हैं. उन में थे एक रॉय सॉ. भारतीय मूल के रॉय सॉ गियाना से ब्रिटेन आये हैं. उन के भाषण को काफ़ी भीड़ और लोकप्रियता मिली है. उन का कहना है कि अफ़्रीकी और एशियाई लोगों की मेहनत पर पूरा ब्रितानी साम्राज्य बना हुआ है. ब्रिटेन जो कुछ है काले लोगों की वजह से है, इस लिए जिन काले लोगों को ब्रिटेन के कारण खराब स्थिति का सामना करना पड़ता है उन्हें अब ब्रिटेन ही आना होगा.

रॉय सॉ खुले आम कहते हैं कि ब्रितानियों ने तीन चार सौ साल हमारा शोषण किया; अब हमें हमारे अस्तित्व के लिए उन का शोषण करना होगा. केवल रहने के लिए आवास या बेरोजगार भत्ता देने से अब सवाल हल नहीं होगा. अब हमें राजनैतिक निर्णय का हक़ भी चाहिए. ब्रिटेन की अर्थनीति या राजनीति क्या रहेगी, यह हम तय करेंगे. ब्रिटेन अफ़्रीका में कालों पर अत्याचार करे, चार्ल्स की शादी का तमाशा चले, इन बातों को हम नहीं चलने देंगे.

हमें राजनीति में भी निर्णायक हिस्सा लेना है.

ब्रिटेन की जनसंख्या में कालों का अनुपात बहुत कम है, इस लिए उन के हाथ में ब्रिटेन की बागडोर संभव नहीं है; यह शायद ठीक भी नहीं होगी. भाव विभोर होने से कभी काम नहीं चलता. इस लिए काले प्रतिशोध की भावना थोड़ी सी अतिरंजित जरूर है. लेकिन अब अन्याय न सहने का उन का निर्णय इस से जरूर जाहिर होता है.

दो साल पहले तक बात अलग थी. लोगों को अलग कर के पीटने की अंग्रेजी चाल ब्रिटेन में तब तक सफल थी. भारतीय सोचता था कि उस की सभ्यता और संस्कृति काफ़ी पुरानी है. मराठी नागरिक सोचता था कि व्यापार में लगा हुआ गुजराती बेहूदा है. गुजराती मराठी लोग सोचते थे कि साउथहॉल का सरदार तो मजदूर है, उस से कैसे मित्रता हो सकती है? अफ़्रीकी, बंगलादेशी, पाकिस्तानी,

जो हिंसा करते हैं

काले नागरिकों पर हमेशा आरोप लगाया जाता है कि वे लूटपाट करते हैं, हिंसा करते हैं. इस आरोप में कितना तथ्य है?

कुछ दिन पहले ब्रैडफ़ोर्ड में एक अध्ययन किया गया, जिस की रपट प्रकाशित हो चुकी है—नाम है 'एशियाई और अपराध: ब्रैडफ़ोर्ड का अनुभव'. ब्रैडफ़ोर्ड में एशियाई काफ़ी मात्रा में रहते हैं और हिंसात्मक वारदातें भी होती हैं. वहां के एशियाई लोगों में, गोरों के मुक़ाबले, ज्यादा बेरोजगारी है. फिर भी अपराध का अनुपात गोरे लोगों में ज्यादा है. सर्वेक्षण में पाया गया कि एशियाई अपराध 30 फ़ीसदी हैं और गोरों के अपराध 50 फ़ीसदी हैं. रपट बनाने वाले समाजशास्त्रियों का कहना है कि एशियाई नागरिक अपराध करने से कतराते हैं, क्यों कि परिवार में रहना, बड़ों की आज्ञा का पालन करना, नीति मूल्यों में विश्वास करना इन चीज़ों का उन पर प्रभाव है. क़ानून का पालन करने की सहज प्रवृत्ति एशियाई नागरिकों में इन समाजशास्त्रियों ने पायी.

फ़िलहाल जो दंगे हुए उस में मिडलैंड का इलाक़ा भी था. फासीवाद में विश्वास करने वाले 'ब्रिटिश मूव्हमेंट' संगठन का मिडलैंड गढ़ माना जाता है. वहां के सात 'नीएम' सदस्यों को न्यायालय में दंगा करने के अपराध में फ़िलहाल सज़ा दी गयी है. उन के पास वर्ण द्वेष फैलाने वाली सामग्री पायी गयी. जब पुलिस ने एक लूटपाट की घटना के संदर्भ में इन सदस्यों के कार्यालय और घरों में छापे मारे तब भारी मात्रा में वहां शस्त्र पाये गये. स्टेन गन, एंटी रायट गन, रिवॉल्वर और पिस्तौल बड़ी मात्रा में इस शस्त्रागार में थे.

कौन करता है हिंसा?

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डैनी भूर : 'फिर यही अंग्रेज कहते हैं कि हम गंदे हैं'

भारतीय सारे लोग ब्रितानी जातिवाद का शिकार होते हुए भी दुर्बल थे, आपस में बँटे हुए थे. ब्रितानी शिक्षा का यह नतीजा था जिस ने लोगों के मन में पश्चिमी विचारों के ज़रिए आपसी ग़लतफ़हमी फैलायी है. लेकिन अब तीसरी दुनिया के लोग आपस में धीरे धीरे एक होने की सोच रहे हैं. तीसरी दुनिया के किसी भी व्यक्ति पर हमला हो तो सारी तीसरी दुनिया एक हो कर मुक़ाबला करे, यह विचार अब धीरे धीरे जड़ें पकड़ रहा है. यह ज़रूर हो सकता है कि इस का फ़ायदा उग्रपंथी उठा रहे हों. किसी न किसी रूप में उग्रपंथी मदद इन के पास पहुँच रही है, जो इन्हें गांधीवादी रास्ते से अलग कर रही है, हिंसा के रास्ते पर ले जा रही है.

इस स्थिति में इस के विपरीत और कुछ होना असंभव सा लग रहा है. तीसरी दुनिया के सारे लोग दोषमुक्त हैं, ऐसा मैं भी नहीं मानता. लेकिन दूसरी तरफ़ ब्रितानी समाज को पूर्णरूपेण अच्छा मानना भी ग़लत होगा. इसी लिए जिस ढंग से काले लोगों को खदेड़ने की कोशिश हो रही है उस से मन में उद्वेग पैदा होता है. सारा ब्रितानी समाज खराब है, ऐसा कहना मुश्किल है. लेकिन इतना तो कहा जा सकता है कि सड़न की चपेट में फँसे ब्रितानी समाज की राजनीति में अब उदारता की कोई जगह नहीं है. इक्का दुक्का कोई व्यक्ति या संगठन मानवता की बात ज़रूर करता होगा, लेकिन उस का कोई असर अब समाज या सरकार पर नहीं हो सकता. आर्थिक संकटग्रस्त ब्रितानी समाज असमंजस का शिकार है. इनॉक पावेल और टैचर के जातीयता का प्रचार उस के दिमाग पर हावी हो गया है. पावेल का फासीवाद व्यवहार आम ब्रितानी आदमी न चाहता हो लेकिन 'कालों को खदेड़ो' यह उस का नारा उन्हें ज़रूर भाता है.

ऐलेन स्टिंटन कह रहे थे कि उन के देश की राजनीति अब झूठ से भरी हुई है. कोई भी दल या प्रत्याशी गोरे वोटों की कीमत पर मानवीय मूल्य, कालों को न्याय की बात नहीं करना चाहता है. स्टिंटन ने कहा, 'कोई नेता जब मुझे' 'सुप्रभात' कहता है तब मैं तुरंत सो जाता हूँ, क्यों कि नेता जब कहता है कि सुबह हुई है तब ज़रूर समझना चाहिए कि वह झूठ बोलता है. अब शाम हो चुकी है.

सारे विश्व भर में हिंसा की लहर आयी है. पूरी व्यवस्था ही ऐसी है कि पीड़ित और सहमे हुए लोग बहुत जल्दी हिंसा पर उतारू हो रहे हैं. पश्चिम जर्मनी, स्विट्ज़रलैंड, हॉलैंड, फ्रांस आदि देशों में भी मेरा वही अनुभव रहा. ब्रिटेन में बेकारी बढ़ गयी, तो कालों के मत्थे वह संकट मढ़ा जा रहा है. जर्मनी में सामाजिक अपराध का संकट फैल रहा है. आर्थिक संकट भी बढ़ रहा है. अब जर्मनी में तुर्की लोगों को पीटने की कोशिश नात्सी संगठन कर रहे हैं. धीरे धीरे एक ऐसा समय आ रहा है जब जर्मनी केवल जर्मनों का ही रहेगा, फ्रांस फ्रांसीसियों का और ब्रिटेन ब्रितानियों का. असहिष्णुता तेज़ी से फैल रही है. यही दृश्य हमारे देश में भी दिखाई दे रहा है. फ़र्क़ केवल परंपरा और सभ्यता का है. ब्रितानी परंपरा में शोषण और असहिष्णुता है. हम उतने दक़ियानूस, कम से कम व्यवहार में, नहीं हैं.

समस्या का समाधान क्या है, मुझे मालूम नहीं. क्या कालों का देश छोड़ कर भागना ठीक होगा? क्या वहाँ रहना ठीक रहेगा? मुझे समाधान में दिलचस्पी कम है. दुख है असहिष्णुता, शोषण और दंभ पर. स्थिति ऐसी है कि हिंसा रुकने वाली नहीं है. दंगे अब निकट भविष्य में थमने वाले नहीं हैं. 'नेशनलिटी बिल' पारित होने पर दंगे और भी बढ़ेंगे.

जितनी हिंसा और दंगों में बढ़ोत्तरी होगी उतना काले और गोरों में कड़ुवापन बढ़ता रहेगा और समाधान की संभावना भी दूर हटती जायेगी. यह प्रक्रिया समाज और राजनीति में सड़न के समानांतर चलती रहेगी. दुःख और चिंता की बात तो यह है.

स्वाधीनता दिवस विशेषांक

दिनमान

16–22 अगस्त

निर्यात व्यापार
नवउपनिवेशवादी शोषण के इस खेल में हम क्यों फँसते जा रहे हैं? —बनवारी

सूबेदार जिलाधीश
जनता और शासनतंत्र के बीच आज एक नया चिंताजनक रिश्ता बन गया है, जो दस या पंद्रह बरस पहले नहीं था.
—जवाहरलाल कौल

प्रधानमंत्री और मुख्यमंत्री
सत्ता का केंद्रीकरण, मुख्यमंत्री और जनता.
—जितेंद्र गुप्त

भारतीय जासूसी तंत्र
'इंटेलीजेंस ब्यूरो' और 'रॉ' के संगठन और उन की कार्यप्रणाली का विश्लेषण.
—रामसेवक श्रीवास्तव

कलाकृतियों के विषय
रचनाशील कलाकारों से बातचीत
—प्रयाग शुक्ल

एशियाई खेल
'एशियाड' और खेल संगठनों की राजनीति.
—योगराज थानी

स्वाधीनता का इंतजार
आज भी विश्व में तीस-एक देश ऐसे हैं जो स्वाधीनता के लिए कसमसा रहे हैं.
—त्रिलोक दीप

कर्मयोगी कृष्ण
यादव कुल के आराध्य राष्ट्रीय मानस के प्रतीक क्यों और कैसे बन गये?
—मुनीष जोशी

लोकनाट्य रूप
कितनी ज़रूरत कितना फ़ैशन ?
—सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

बिगड़ी हुई बंदिशें
—केशवचंद्र वर्मा

विकलांग : समान अधिकारों की ज़रूरत —विनोद भारद्वाज

पृष्ठ 60 : मूल्य वही

अपना अंक अभी से सुरक्षित करा लें.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

जिब्राल्टर : अपने अपने तर्क

स्पेन के सम्राट का शाही विवाह का बहिष्कार

जिब्राल्टर एक बार फिर विवाद का मुद्दा बन गया है. स्पेन के सम्राट हुआन कार्लोस ने 29 जुलाई को युवराज चार्ल्स और लेडी डियाना स्पेंसर के शाही विवाह में शामिल न हो कर इस विवाद को और गहरा दिया है. सम्राट का एतराज युवराज द्वारा भूमध्यसागर स्थित जिब्राल्टर में अपनी सोहागरात मनाने का फैसला था. सम्राट का तर्क था कि जिब्राल्टर स्पेन का भाग है लिहाजा ऐसा फैसला लेने से पहले ब्रितानी सरकार से 'बुनियादी सद्भावना' की अपेक्षा अवश्य की जाती थी. दरअसल, यह सरकारी चूक थी. ब्रिटेन सरकार ने स्पेन को युवराज चार्ल्स के सोहागरात के बारे में स्पेन सरकार को सूचित किया अवश्य लेकिन तब जब सम्राट कार्लोस अपना निर्णय ले अपनी नाखुशी का इजहार कर चुके थे.

सम्राट कार्लोस की इस अप्रसन्नता के अतिरिक्त ब्रितानी हाउस ऑफ लार्डस में भी जब नागरिकता विधेयक पर बहस हो रही थी तो बहुत से लार्डों ने सरकार की इस 'बुनियादी सद्भावना' की अवहेलना करने के लिए प्रधानमंत्री श्रीमती मारग्रेट टैंचर की आलोचना करते हुए उन्हें सलाह दी कि वह जिब्राल्टर के सभी नागरिकों को ब्रितानी नागरिक घोषित कर दें. सुझाव अपने आप में बुरा नहीं था लेकिन विचाराधीन नागरिकता विधेयक की मूल भावना के विरुद्ध था. यदि जिब्राल्टर के लोगों को ब्रितानी नागरिकों के तौर पर स्वीकार किया जाता है तो ब्रिटेन के अन्य उपनिवेशों के लोग भी इस तरह की माँग करेंगे जिस में हाङ्काङ प्रमुख है. यदि यहाँ के लोगों को ब्रितानी नागरिकता प्रदान की जाती है तो उन्हें प्रथम श्रेणी का नागरिक माना जायेगा अर्थात् उन के ब्रिटेन मे प्रवेश पर किसी प्रकार की पाबंदी नहीं होगी. लिहाजा सरकार ने इस मुद्दे पर चुप्पी साध लार्डों की तीखी आलोचना सुनी. बावजूद इस के नागरिकता विधेयक पारित हो गया.

लेकिन स्पेन के सम्राट कार्लोस और उन की लोकतंत्री सरकार की अवहेलना अधिक समय तक नहीं की जा सकेगी : एक तो यूरोपीय देश होने के नाते उस से विशेष रिश्ते हैं और दूसरे अगले तीन वर्षों (1984 तक) में वह भी यूरोपीय आर्थिक समुदाय में शामिल हो कर उसी परिवार का सदस्य बन जायेगा जिस का ब्रिटेन भी एक सदस्य है. फिलहाल स्पेन और ब्रिटेन में जो कड़ुवाहट पैदा हो गयी है, संबंधों को सामान्य बनाने की गर्ज से ब्रितानी सरकार और यूरोपीय समुदाय के अन्य देश भी जिब्राल्टर के नागरिकों को यूरोपीय समुदाय के नागरिक का दर्जा देने पर विचारविमर्श कर रहे हैं. इस के लिए सम्राट संभवतया तैयार हैं, क्योंकि इस का मतलब स्पेन के यूरोपीय आयोग के सदस्य बनने की प्रक्रिया का मार्ग जल्द प्रशस्त होना है.

आज से बारह वर्ष पहले जिब्राल्टर की सीमा को बंद किया गया था. तब जनरल फ्रांको सत्ता में थे. आज जनरल फ्रांको को मरे भी छह वर्ष हो चुके हैं और सीमा अभी तक बंद पड़ी है. इस से कई तरह का नुकसान हो रहा है : एक तो यूरोप के बहुत से लोगों को

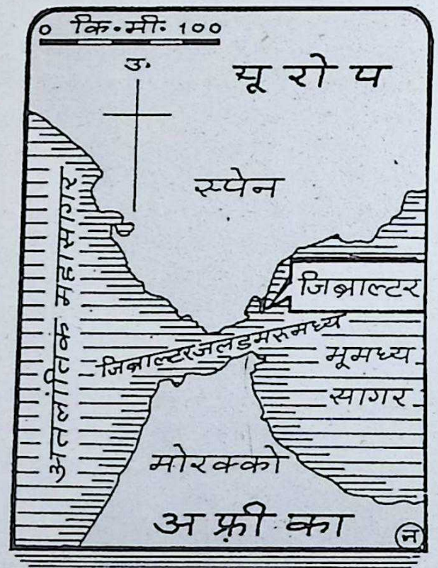

जिब्राल्टर में काम मिलता था, जो अब नहीं मिल रहा है. दूसरे बहुत से लोगों के सगे-संबंधी जिब्राल्टर में रह रहे हैं, उन्हें उन से मिलने की छूट नहीं. इस से यहाँ के निवासियों में स्पेन के शासकों के प्रति सद्भावना नहीं बल्कि अविश्वास की भावना पैदा हो सकती है, जिसे संभवतया सम्राट हुआन कार्लोस जैसे शालीन व्यक्ति की गरिमा के अनुकूल नहीं माना जाता है. प्रेक्षकों के अनुसार सम्राट ने युवराज चार्ल्स की शादी के समय जिब्राल्टर को मुद्दा बना कर भी तो शालीनता का परिचय नहीं दिया : जिस दिन युवराज चार्ल्स की शादी थी सम्राट कार्लोस सपरिवार भूमध्यसागर मंथन पर निकल गये थे.

सम्राट कार्लोस के सत्तारूढ़ होने के बाद जिब्राल्टर की सीमाबंदी समाप्त करने के लिए ब्रिटेन के साथ कई बार स्पेन की विभिन्न स्तरों पर वार्ता भी हुई. कई बार करार भी तैयार हो गये लेकिन उन पर अमल नहीं हुआ. स्पेन के शासकों की एक माँग यह भी है कि जिब्राल्टर की वह सीमाबंदी समाप्त करने को तैयार हैं बशर्ते उन्हें यह आश्वासन दिलाया जाये कि वहाँ रहने वाले स्पानी लोगों के साथ भेदभाव नहीं बरता जायेगा. एक करार में तो स्पानियों को समान अधिकारों और 'बुनियादी सद्भावना' तक की गारंटी को लिखित तौर पर दर्ज किया गया फिर भी उन्हें ब्रितानी हुक्मरानों की नीयत पर यकीन नहीं. संभवतया पिछले कई दशकों से उन्होंने (ब्रिटेन ने) अपनी ऐसी ही साख बना रखी है.

कुछ प्रेक्षकों के अनुसार जिब्राल्टर की सीमाबंदी स्पेन ने अपने हितों को ध्यान में रख कर की है. इस वर्ष फरवरी में सैनिक क्रांति के प्रयास से सम्राट हुआन कार्लोस की सरकार हिल गयी थी. यह तो आभास मिल ही गया कि सेना में असंतोष है और यह असंतोष देश की सत्ता भी पलट सकता है. शासकों के अनुसार यदि जिब्राल्टर की सीमा खोली जाती है तो नामुमकिन नहीं कि बहुत से असंतुष्ट सैनिक जिब्राल्टर भाग जायें और वहाँ रहते अपनी समरनीति तय करें. ऐसा होने से स्पेन की सत्ता के पाये डोल सकते हैं लिहाजा ऐसे सभी असंतुष्ट तत्त्वों को सम्राट कार्लोस और उन की सरकार स्पेन में ही समाहित किये हुए है.

स्पेन के दक्षिणपूर्व में स्थित जिब्राल्टर भूमध्यसागर का प्रवेशद्वार माना जाता है और साथ ही इसे भूमध्यसागर का प्रहरी भी कहा जाता है. यह जलडमरूमध्य यूरोप को अफ्रीका से अलग करता है और इस की चौड़ाई अलग अलग स्थानों पर अलग अलग है. सब से कम चौड़ाई 7.75 मील है और सब से अधिक 23.75 मील. यह स्थान 1704 से ब्रितानी कब्जे में है. यहाँ पर एक बहुत बड़ा बंदरगाह है और नौसैनिक अड्डा भी. यह पठार 2.75 मील लंबा, 1.4 मील चौड़ा है और इस की ऊँचाई 1,396 फुट है. यहाँ की आबादी 30,000 (1974 का आँकड़ा) है. आबादी में स्पानी, इतालवी, पुर्तगाली, माल्टावासी, अंग्रेज आदि हैं. 1966 में स्पेन ने ब्रिटेन से जिब्राल्टर के बारे में 'काफी स्वायतत्ता' की माँग की. इस माँग के साथ ही उस की नाकेबंदी कर दी गयी. लेकिन ब्रिटेन ने अपना पक्ष मजबूत बनाने के लिए 1967 में एक जनमतसंग्रह कराया जिस में 12,138 (99.6 प्रतिशत) लोगों ने जिब्राल्टर के ब्रिटेन के साथ बने रहने के पक्ष में मत दिया जब कि केवल 44 (0.4 प्रतिशत) स्पेन के साथ बने रहने के समर्थक थे. 30 मई, 1969 को जिब्राल्टर को एक नया संविधान दिया गया जिस के अनुसार यहाँ की निर्वाचित असेंबली को स्थानीय मामलों के बारे में अधिक अधिकार दिये गये. लेकिन साथ ही संयुक्तराष्ट्र महासभा ने एक प्रस्ताव पारित कर 1 अक्तूबर 1969 तक जिब्राल्टर का औपनिवेशिक दर्जा समाप्त करने का आग्रह किया जिस पर ब्रिटेन ने अभी तक अमल नहीं किया है.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

विश्व

ईरान

नया राष्ट्रपति

पुराना फ्रांस में

एक के बाद एक घटी कई घटनाओं में ईरान के विभिन्न वर्गों में कई तरह की प्रतिक्रियाएँ हुई हैं. बुद्धिजीवी वर्ग अपने आप को हताश पा रहा है जब कि सत्तारूढ़ रिपब्लिकन इस्लामी पार्टी का घुर मौलिकतावादी गुट भूतपूर्व गणित प्राध्यापक और प्रधानमंत्री 43 वर्षीय मुहम्मद अली रजाई के राष्ट्रपति पद के चुनाव में भारी जीत से बेइंतहा खुश है. लेकिन 80 वर्षीय क्रांतिकारी नेता अयातुल्ला खुमैनी ईरान की वर्त्तमान स्थिति से अधिक संतुष्ट और खुश नहीं दीखते. जिस प्रकार अपदस्थ राष्ट्रपति अवलहसन बनीसदर (जनवरी 1980 में ढाई हजार वर्ष की राजशाही की समाप्ति के वाद पहले निर्वाचित राष्ट्रपति--4 फरवरी को पद ग्रहण) राजधानी तेहरान में एक मास तक अपनी गतिविधियां को जारी रखे रहे और उन की खबर तक सरकारी अमले को न हुई यह बात जरूर सरकार के कमजोर तंत्र को उजागर करती है. इस से बड़ी चपत रजाई के राष्ट्रपति पद के लिए चुने जाने के बाद ही देश से वानीसदर का साफ निकल जाना था. एक बार फिर वानीसदर ने फ्रांस में ही राजनैतिक शरण ली है जहाँ कभी वह शाह के शासन का विरोध करने के लिए पहले भी तेरह बरस गुजार चुके थे. वानीसदर ने फ्रांस में अर्थशास्त्र में विशेष योग्यता प्राप्त की है.

केवल राजनैतिक अस्थिरता से ही ईरान ग्रस्त नहीं आर्थिक और प्राकृतिक आपदाओं ने भी उस के द्वार पर दस्तक दी है. कल का आर्थिक तौर पर संपन्न और शक्तिशाली ईरान आज दूसरों का मोहताज सा लगता है. वह मुश्किल से अपने तेल संयंत्रों से अपनी जरूरत भर का ही तेल निकाल पाता है. कल तक उस की सारी अर्थव्यवस्था तेल के निर्यात पर आधारित थी. उस की अर्थव्यवस्था निस्संदेह कमजोर हुई है, असुरक्षा की भावना बढ़ जाने से हर आदमी दूसरे को खौफ की नजर से देखता हैं. वानीसदर के अनुसार आज ईरान में 'बम गाड़ने और सरकार द्वारा प्रतिपक्ष को फाँसी पर लगाने की जैसे होड़ सी लग गयी है. जहाँ बमों के विस्फोट की संख्या कम हुई है वहाँ फाँसी पर लटकाये जाने वाले लोगों की तादाद में कमी नहीं आयी है, दिनोंदिन बढ़ी है. 22 जून, 1981 को अयातुल्ला खुमैनी द्वारा वानीसदर को राष्ट्रपति पद से वर्खास्त करने के वाद तक तीन सौ से अधिक लोगों को फाँसी पर लटकाया जा चुका है. इन में वामपंथी और वानीसदर समर्थक लोगों की संख्या अधिक है.

वेशक वानीसदर जो अठारह मास तक देश के राष्ट्रपति रहे तथ्यों से अधिक परिचित हैं. यदि इन तथ्यों को वानीसदर की अतिशयोक्ति भी माना जाये तो जिस प्रकार 16 जून 1979 को शाह के देश छोड़ने के वाद ईरान में अस्थिरता पैदा हो गयी थी अयातुल्ला खुमैनी के सत्ता में आने के वाद भी ईरान में राजनैतिक स्थिरता नहीं आयी . इस दौरान अलवत्ता भूकंप के दो वड़े झटके लगे हैं (छोटे तो कई लगे हैं-एक में पाक नगरी कौम भी हिल गयी थी) इस से लगता है कि खुदा के वंदे खुमैनी से भी खुदा खुश नहीं है. खुदा तो सृजन करता है, रचता है उस की रचना को इस तरह तवाह करने से भला खुदा कैसा खुश हो सकता है. चाहे वह इमाम ही क्यों न हो. वर्त्तमान भूकंप (29-30 जुलाई) में आठ हजार लोगों के मारे जाने के समाचार हैं और दक्षिण पूर्वी भाग के लाखों लोग घायल हो बेघरवार हो गये हैं. उन्हें सँभालने का दायित्व संयुक्तराष्ट्र के राहत अभिकरण को सौंपा गया है.

नवनिर्वाचित राष्ट्रपति रजाई ने 2 अगस्त को अपने पद की शपथ ग्रहण की. यह शपथ खुमैनी ने ग्रहण करायी. उन्हें एक और शपथ मजलिस (संसद्) के समक्ष लेनी है जिस में सात आठ दिन लग सकते हैं. अपने शिक्षामंत्री मुहम्मद जावेद वाहोनार को रजाई ने अगला प्रधानमंत्री नियुक्त किया है. क्योंकि रजाई सत्तारूढ़ रिपब्लिकन इस्लामी पार्टी के उम्मीदवार थे लिहाजा उन्हें उग्र मजलिस का सामना नहीं करना पड़ेगा. लेकिन उन के प्रधानमंत्रीकाल में जिस ढंग से वानीसदर देश से भाग निकलने में सफल हुए वह अलवत्ता उन की कमजोर शासनशैली का सबूत है. वानीसदर का साथ इस्लामी मार्क्सवाद गुट के मुजाहेदीन-ए-खल्क के नेता मसूद रजावी ने साथ दिया. उन का यह कार्य निस्संदेह उन की सफल समरनीति का ही परिचायक है. रजावी को ही वानीसदर ने (अपने गोपनीय प्रवास के दौरान) अपना प्रधानमंत्री घोषित किया था. इस समय वह भी फ्रांस में हैं. यद्यपि ईरान ने वानीसदर को एक अपराधी बता कर फ्रांस से उन्हें लौटाने का आग्रह किया है लेकिन मितेरां सरकार ने वानीसदर को राजनैतिक शरण प्रदान कर ईरान सरकार के आग्रह की अनदेखी कर दी है. अलवत्ता फ्रांस ने वानीसदर को अपनी राजनैतिक गतिविधियों के प्रसार से परहेज करने की सलाह दी है. यह फैसला ईरान में रहने वाले फ्रांसीसियों की सुरक्षा को ध्यान में रख कर किया गया है.

वानीसदर के एक ईरानी सैनिक विमान फ्रांस के नारमंडी के एवरेवस हवाई अड्डे में प्रवेश करने के वाद कहा था कि उन का उद्देश्य ईरान की मौजूदा सरकार को सत्ता से हटा कर शीघ्र ईरान लौटना है. वानीसदर को उस के वाद 96 किलोमीटर दूर उन की बेटियों के

पेरिस में वानीसदर : एक बार फिर

पास पहुँचाया गया. उन के विमान का चालक कर्नल मोयज्जी था. उन का विमान ईरान के स्थानीय समय के अनुसार सुबह साढ़े दस बजे उड़ा और तुर्की, पूर्वी भूमध्यसागर से होता हुआ यूनान और बाद में फ्रांस पहुँचा. जब वह फ्रांस पहुँचे तो वानीसदर की मूछें नहीं थीं. क्या यह उन के पराजय स्वीकार करने की निशानी थी या उस प्रतिज्ञा का निश्चय कि जब तक वह वर्तमान शासकों को सत्ताच्युत नहीं कर देते तब तक मूँछें नहीं रखेंगे, इस तरह तरह की राय व्यक्त की जा रही है.

वर्तमान शासकों को सत्ता से हटाने की और भी कई लोगों ने हलफ ली है. वेशक कुछ लोग देश में भी हैं लेकिन विदेशों में रहने वाले लोगों में वानीसदर के अलावा अपदस्थ शाह के पुत्र 21 वर्षीय रेजा शाह द्वितीय भी है जिन्होंने अपने पिता की मृत्यु के बाद अपने आप को ईरान का बादशाह घोषित किया है. उन्होंने भी अपने काहिरा स्थित मुख्यालय से ईरान लौटने और लोगों को नागरिक अधिकार बहाल कराने का आश्वासन दिलाया है. शाह के देश छोड़ने के बाद सत्ता सँभालने वाले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

शापुर बख्तियार भी इस समय पेरिस में हैं. वह भी वर्तमान शासकों को सत्ता से हटाने का इरादा रखते हैं. लेकिन दिलचस्प बात यह है कि इन तीनों के अपने अलग-अलग दृष्टिकोण हैं. छोटे बादशाह और शापुर बख्तियार में एका हो सकता है. बख्तियार ने बानी सदर के साथ किसी भी तरह से सहयोग करने से इनकार कर दिया है और शायद बानी सदर भी नहीं चाहेंगे. बानी सदर के फ्रांस छोड़ कर अन्य किसी स्थान से (संभवतया इटली से) ईरान सरकार को अपदस्थ कराने की समरनीति तय करने का इरादा रखते हैं.

बेशक रजाई ने राष्ट्रपति पद सँभाल लिया है लेकिन न तो उन्हें प्रशासनिक अनुभव है और न ही सभी वर्गों को साथ लेकर चलने का दमखम. बेशक वह दावा करते हैं कि उन्हें बानी सदर से अधिक मत मिले हैं लेकिन बानी सदर ने इस दावे को बेबुनियाद बताया है.

वर्तमान चुनाव में 15 वर्ष के व्यक्तियों को मतदान का अधिकार दिया गया था. इस के अलावा अभी यह भी स्पष्ट नहीं कि बानी सदर की तरह उन्हें भी सर्वोच्च सैनिक कमांडर का पद मिलेगा या नहीं.

नेपाल समाचार

पंचायत का रास्ता

24 जुलाई को रेडियो नेपाल ने परशुनारायणचौधरी के वक्तव्य को प्रमुखता से प्रसारित किया : श्री चौधरी ने जनमत संग्रह का परिणाम स्वीकार करते हुए तीसरे संवैधानिक संशोधन को अंगीकार किया है और उस का समर्थन करते हुए कहा है कि नेपाल में अतिवादी और प्रतिक्रियावादी तत्त्व देश को गुमराह कर के देश में जड़ता पैदा कर रहे हैं. इस स्थिति में राजा, राष्ट्रीय सार्वभौमिकता और प्रजातंत्र के पक्ष में खड़ा होना जरूरी है; श्री चौधरी ने अपने समूह के समान विचार वाले मित्रों का भी आह्वान किया है.

25 जुलाई के पूरे दिन श्री चौधरी अगम्य बने रहे. रात साढ़े नौ बजे राजसभा सदस्य केवल चौधरी के घर बड़ी मुश्किल से वह 'दिनमान' के लिए 'कुछ' बातचीत करने को राजी हुए. अपने फैसले का स्पष्टीकरण करते हुए मितभाषी और गंभीर प्रकृति के परशुनारायण चौधरी का कहना था : "हमारे सामने प्रश्न यह है कि अब हमें क्या करना चाहिए? मैं इस पर सोच रहा था और स्थानीय निर्वाचन में भाग लेने के पक्ष में था." तो क्या आप का यह निर्णय आकस्मिक नहीं था? जवाब : "आकस्मिक तो था पर असामयिक नहीं. काफी दिन से मैं दल को सक्रिय करने पर जोर दे रहा था. पांच साल बाद हमें चुनाव लड़ना है तो भी अभी से तैयारी करनी होगी. मैंने बी. पी. से विचार विमर्श किया और मुझे लगा कि वह कोई निर्णय नहीं ले रहे हैं. बी. पी., किशुन जी और गणेशमान जी तीनों अलग अलग भाषा बोलते हैं, अलग अलग विचार रखते हैं. मैंने भी अपना विचार रख दिया है. इस पक्ष पर भी सोचा जाये." तो क्या यह आप का नेतृत्व के प्रति विद्रोह है? वह जवाब टाल गये : **"मैं प्रजातंत्र के पक्ष में ही कार्यरत हूँ."** अलबत्ता उन्होंने आशा व्यक्त की कि पंचायत के भीतर 38 समूह और 'प्रजातंत्रवादी' उन के साथ होंगे और आगामी स्थानीय चुनावों में वे संगठित रूप में उपस्थित हो सकेंगे.

श्री चौधरी के पलायन से नेपाली कांग्रेस को गंभीर आघात पहुँचा है जब कि पंचायती पक्ष के लिए जनमत संग्रह, संविधान संशोधन और आम निर्वाचन के बाद विजय की यह अगली कड़ी है. उन के पंचायत में चले जाने से सुवर्ण पक्ष का नेपाली कांग्रेस से संपूर्ण विलगाव और पंचायत प्रवेश पूरा हो गया है. प्रखर वक्ता, कुशल संगठनकर्त्ता और निर्भीक तथा महत्त्वाकांक्षी, संभ्रांत थारू परिवार में जन्मे, श्री चौधरी ने राजनैतिक जीवन नेपाली कांग्रेस से ही शुरू किया था. वह कोइराला सरकार में शिक्षामंत्री रहे, फिर उस के विघटन के बाद सुवर्ण शमशेर के साथ कलकत्ता में रहे और 1968 में स्वदेश लौट आये. विश्वस्त सूत्रों के अनुसार पिछले जनमत संग्रह से पहले ने. कां. की सरकार बनने की आशा कर रहे बी. पी. उन्हें प्रधानमंत्री बनाने का फैसला कर चुके थे.

विश्वास किया जाता है कि पद्म शंकर अधिकारी, शशि शमशेर, सुरेशमान जोशी आदि नेता भी उन के साथ हैं. 20 जुलाई को वह दरबार के सचिव रंजनराज खनाल से मिले थे. यह दिलचस्प है कि कुछ प्रेक्षक उन के वक्तव्य का बी. पी. कोइराला के वक्तव्य से साम्य देखते हैं और उन के कदम की तुलना कुछ दिन पहले कृष्ण प्रसाद भट्टराई के मूल राष्ट्रीय समस्याओं पर सरकार से बातचीत करने को तैयार होने के वक्तव्य से करते हैं. लेकिन बी. पी. कोइराला ने श्री चौधरी के निर्णय को व्यक्तिगत बताते हुए कहा है : "प्रजातंत्र पाने का संघर्ष लंबा है, उसे न तो गुप्त षड्यंत्र से पाया जा सकता है, न हिम्मत खो कर और न ही अधीर हो कर त्वं शरणम् की नीति अपना लेने से." उन्होंने श्री चौधरी को नेपाली कांग्रेस के महामंत्री पद से निष्कासित कर दिया है. एक अन्य महत्वपूर्ण टिप्पणी विश्वबंधु थापा की है. : "हम भी वहाँ जा कर लौट आये हैं. वहाँ जा कर कुछ नहीं होगा. केही खलपत्रो लाग्दैन."

—किशोर नेपाल

जन चेतना की कमी एवं प्रजातंत्रवादियों के बीच एकता के अभाव में जनमत संग्रह का परिणाम बहुदल के पक्ष के विपरीत गया. स्वभावतः संविधान के तृतीय संशोधन में संसदीय प्रजातंत्र के कुछ लक्षण होते हुए भी राजनैतिक दलों को संगठन की आजादी नहीं मिली. प्रजातांत्रिक एकता एक समूह विशेष के अहं के कारण नहीं हो सकी. यदि कोई व्यक्ति या व्यक्ति समूह अपने को पाक एवं अन्य सभी को नापाक समझता रहेगा तो ऐसी दशा में एकता कहाँ संभव है?

संविधान के तृतीय संशोधन के बाद दलीय प्रजातंत्र में विश्वास रखने वालों के समक्ष एक बड़ा प्रश्न खड़ा हुआ कि संशोधित संविधान के तहत होने वाले आम चुनाव में भाग लिया जाये या नहीं. इस पर बहुत ही वाद विवाद होता रहा लेकिन किसी भी प्रजातंत्रवादी समूह ने स्पष्ट तौर पर यह घोषणा करने की हिम्मत नहीं बाँधी कि जब तक निर्दलीय व्यवस्था रहेगी, वह चुनाव में शरीक नहीं होगा. अपने को सब से पाक एवं ताकतवर समझने वाले एक समूह के नेताओं ने अपने मन लायक एक अंतरिम सरकार बन जाने के बाद ही चुनाव में भाग लेने की बात दुहराना उचित समझा. एक वामपंथी समूह के नेता की धारणा थी कि सभी बहुदलवादी शक्तियों को संयुक्त हो कर चुनाव में खड़ा होना चाहिए और तभी चुनाव संघर्ष जोर का हो सकता है.

स्वर्गीय सुवर्ण के हम अनुयायियों ने 15 मई 1968 के पार्टी फैसले के आधार पर संविधान के तृतीय संशोधन को पूर्ण प्रजातांत्रिक व्यवस्था (दल सहित व्यवस्था) की स्थापना की दिशा में एक कदम मान कर चुनाव में शरीक होने का निर्णय लिया. कुछ मुद्दों पर स्व. सुवर्ण के अनुयायियों के बीच भी मतभेद हैं. श्री बखान सिंह गुरुंग, श्री काशीनाथ गौतम आदि द्वारा 1968 के पार्टी फैसले की गलत परिभाषा कर सरकार में सम्मिलित होने की बात को हम गलत मानते हैं और इस का विरोध करते हैं. श्री अच्युत राज रेग्मी द्वारा संविधान सुधार सुझाव आयोग की सदस्यता स्वीकार किये जाने का भी मैंने विरोध किया था. क्यों कि ऐसी सरकार में जिस का नेता निर्दलीय पंचायती प्रजातंत्र को ही पूर्ण प्रजातांत्रिक व्यवस्था मानता हो, सम्मिलित होने पर, जनता में हमारी छवि बिगड़ती है. स्व. सुवर्ण ने 1968 में महाराजा के साथ सिर्फ सहयोग की बात कही थी. सहयोग तो सरकार के बाहर रह कर रचनात्मक विपक्ष की भूमिका अदा कर अच्छी तरह कर सकते हैं. यदि सभी लोग सरकार में ही सम्मिलित होने की बात सोचने लगें, तो विपक्षी कौन होगा? क्या विपक्ष के अभाव में सरकार पर जनता का नियंत्रण रह पायेगा. यदि हमने अपने और पंचायत के पुराने नेताओं के बीच मौलिक

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

मतभेद को जनता के सामने लाने का प्रयास नहीं किया तो जनता निराश नहीं होगी? और फिर इस नैराश्य से प्रजातंत्रवादियों एवं राज संस्था के विरोधियों को लाभ नहीं होगा?

हम सुवर्ण शमशेर के अनुयायी प्रजातंत्रवादियों के उद्देश्य चार खंभों पर आधारित हैं:

1—जनता के बीच रचनात्मक कार्य करके जन चेतना जागृत कर संविधान में क्रमिक संशोधन द्वारा पूर्ण प्रजातंत्र की स्थापना.

2—राजसंस्था नेपालियों की पवित्र धरोहर है. इतिहास साक्षी है कि अपनी जनता की संगठित आवाज की राजमुकुट ने हमेशा कद्र की है. नेपाल जैसे छोटे एवं अविकसित राष्ट्र के लिए राजमुकुट जैसी संस्था की आवश्यकता है, जहां से जनता को उस के मनोनुकूल निर्देशन अविछिन्न रूप से प्राप्त होता रहे. इसीलिए राजमुकुट की पवित्रता की रक्षा अनिवार्य है, मजबूरी नहीं.

3—नेपाल के हर कोने में रहने वाली नेपाली जनता को बिना किसी भेदभाव के राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक हर क्षेत्र में समानता का अधिकार मिलना चाहिए. तराई से राजनैतिक उपेक्षा पहाड़ की गरीबी एवं हरिजनों का सामाजिक तिरस्कार समाप्त हुए बगैर, नेपाल एक सबल राष्ट्र नहीं बन सकता है और राष्ट्रीयता मजबूत नहीं हो सकती है.

4—नेपाल की राष्ट्र नीति तटस्थता की रहनी चाहिए. पड़ोसी राष्ट्रों से घनिष्ट संबंध रहने पर ही नेपाल शांति से अपना विकास कर सकता है. लेकिन हमें पड़ोसी राष्ट्र भारत को अन्य विदेशी राष्ट्रों से अलग रखना ही होगा. रिश्ता खराब होने पर मित्रता टूट जाती है, लेकिन भयंकर से भयंकर मनमुटाव होने पर भी भाई से भाई का संबंध अटूट बना रहता है. ठीक यही अंतर भारत तथा अन्य विदेशी राष्ट्रों के बीच हमें मान कर चलना पड़ेगा.

पिछले आम चुनाव में हमारी हार का कारण सरकार की हमारे कुछ स्पष्ट विचारों से नाराजगी, सरकारी एवं कुछ धनाढ्य उम्मीदवारों के मुकाबले साधन की कमी तथा हमारे पास सक्षम संगठन का अभाव थे. हम लोगों ने अठारह वर्षों तक निर्वासित जीवन बिताया. एक पीढ़ी का अंतराल हो गया. दूर-दराज के लोगों से संपर्क टूटा रहा. सिर्फ डेढ़ महीने के अंदर अपने चुनाव क्षेत्र के 435 गांवों में पहुंच कर संगठन खड़ा करना भी असंभव था. फिर भी मैं लगभग 325-350 गांवों में पहुंचा जिस में ऐसे भी गांव काफी संख्या में मिले जिस में नेपाली कांग्रेस का कोई कार्यकर्त्ता पिछले 20 सालों से नहीं पहुंचा था. कुछ ऐसे भी गांव हैं जहां मेरी बात तो छोड़ दीजिए, देश के सब से बड़े नेता कहलाने वाले श्री बी. पी. कोइराला का भी नाम लोगों ने नहीं सुना था. पुराने पंचायती कार्यकर्त्ता लगभग हर गांव में देखे गये, क्यों कि साधन का स्रोत बीस सालों से उन के पास है. बीस सालों से हुए ग्राम पंचायतों आदि के चुनावों में मत डलवाने के उल्टे सीधे तरीके से पंचायती कार्यकर्त्ता अवगत हैं. दबदबे वाले पंचायती नेताओं एवं प्रशासन से अभी भी जनता डरती है. वैसे मेरे विचार सुनने के लिए बड़ी संख्या में जनता आम सभाओं में एकत्र होती थी. मेरे निर्वाचन क्षेत्र सप्तरी में दूसरे किसी भी उम्मीदवारों ने आम सभा, जुलूस आदि करने की जरूरत नहीं समझी, क्यों कि वे वोट की व्यवस्था करने में ही व्यस्त रहते थे. लेकिन मैंने लगभग बीस सभाएं कीं. 27 अप्रैल 1981 को जिला मुख्यालय राजबिराज में हुई विशाल आम सभा

जनता से संपर्क?

गजेन्द्र नारायण सिंह

के बाद आम सप्तरीवासी मेरी जीत के प्रति निश्चित थे. लेकिन सक्षम संगठन एवं साधन के अभाव में मैं अपने मतदाताओं को मतदान के दिन संरक्षण प्रदान नहीं कर सका. मैं हार गया, लेकिन मुझे प्रसन्नता है कि इन सारी कठिनाइयों के बावजूद जब 2 लाख 12 हजार में से 1 लाख 9 हजार मत पड़े तो उस में मुझे 24 हजार से ऊपर मत प्राप्त हुए. यानी विजेता से केवल साढ़े सात हजार कम. चुनाव में खड़ा होने से जनता के साथ परिचय का नवीनीकरण हुआ. कुछ अच्छे बुरे अनुभव हुए. कुछ नये ईमानदार साथी हमें प्राप्त हुए. लेकिन बहिष्कारवादियों को इन फायदों से वंचित रह जाना पड़ा. फिर इन का सक्रिय बहिष्कार भी नहीं था; जिस से इन के अधिकांश कार्यकर्त्ता बरगला कर प्रजातंत्र विरोधी उम्मीदवारों के साथ सहयोग करते पाये गये. अब सुना है कि इन के बीच इस को ले कर बड़ा मतभेद शुरू हो गया है. श्री परशु नारायण चौधरी जैसे बहिष्कारवादी नेताओं का त्यागपत्र इसी मतभेद के प्रथम विस्फोट के रूप में सामने आया है. यदि अब भी अपनी ढुलमुल नीति का परित्याग कर सही धरातल पर उतरने का प्रयास ये लोग नहीं करते हैं तो भावी इतिहास इन्हें क्षमा नहीं करेगा.

आज देश के अंदर कुछ बड़े कहलाने वाले लोग जोरों से देश पर बाहरी खतरे की बातें कर रहे हैं. मेरी समझ से यह उन की राजनैतिक नैराश्यता के सिवा कुछ भी नहीं है. और यह ठीक भी नहीं है. इस से जनता आतंकित और अपमानित होती है. सच तो यह है कि आज देश पर कहीं से कोई खतरा नहीं है. हमारे संबंध दोनों पड़ोसी राष्ट्रों से आज काफी मधुर हैं. दूसरे मित्र राष्ट्रों का सहयोग भी हमें प्राप्त हो रहा है. देश पर खतरा कभी भविष्य में हुआ भी तो देश के अंदर छुपे उन तत्त्वों से होगा जो राष्ट्र, राष्ट्रीयता एवं संप्रभुता से अपने व्यक्तिगत या समूहगत स्वार्थ को अधिक महत्त्व देते हैं. ये कभी कभी चीनी तो कभी भारतीय हमले का हौवा खड़ा करते हैं. जनता को ऐसे नारों से सावधान रहना चाहिए.

भाषा के संदर्भ में मेरी राय वही है जो पहले थी. राष्ट्र भाषा नेपाली का हम पूर्ण सम्मान करते हैं. लेकिन क्षेत्रीय भाषाओं की उपेक्षा से राष्ट्र कमजोर हो गया. इस संदर्भ में पिछले दो वर्षों में भारी अंतर आया है. जहां पहले सार्वजनिक स्थलों पर हिंदी बोलने वालों का माईक छीन लिया जाता था, उन्हें भारी बेइज्जती का सामना करना पड़ता था, वहीं अब राजनैतिक और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं को सार्वजनिक स्थानों पर हिंदी में बोलने पर किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है. आम तौर पर लोग दिल से उन की इज्जत करते हैं.

हमारे जैसे सुवर्ण के अनुयायियों ने अब झूठी प्रजातंत्रवादी एकता के चक्कर में घूमने के बजाय धरातल पर काम करने की सोची है. हम जनता के बीच रचनात्मक कार्य करेंगे. ग्राम पंचायत के चुनाव में प्रजातंत्रवादी कार्यकर्त्ता को खड़ा करेंगे. वर्गीय संगठन की सदस्यता प्राप्त कर किसान, मजदूर, युवक आदि की समस्याओं को ले कर संघर्ष करेंगे. इस से जन चेतना जागृत होगी और अधिकार और कर्तव्य की बात अधिक समझेगी. फिर हमें विश्वास है कि परंपरा के अनुसार संगठित जन आवाज की कद्र करते हुए राजा भी पूर्ण प्रजातंत्र की दिशा में महत्त्वपूर्ण कदम उठायेंगे. यह आश्चर्य की बात नहीं होगी कि 5 सालों के बाद होने वाले आम चुनावों में दलों का संगठन करने की स्वतंत्रता भी प्राप्त हो जाये.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

तीन दिन की क्रांति

जब राष्ट्रपति बाहर हों

गांबिया के राष्ट्रपति डवाडा जावरा इस समय अपने देश वापस पहुँच चुके हैं. लेकिन विद्रोही अभी भी सेनेगल की सेनाओं और राष्ट्रपति के वफादार सैनिकों का मुकाबला कर रहे हैं.

राष्ट्रपति जावरा एक सैनिक विमान में राजधानी बांजुल पहुँचे. उनके पहुँचने से कुछ पहले तक विद्रोही बंधकों को मार डालने की धमकी रेडियो से प्रसारित कर रहे थे. गांबिया के राष्ट्रपति के अनुरोध पर पड़ोसी देश सेनेगल ने विद्रोहियों को दबाने के लिए अपनी सेनाएँ वहाँ भेजीं. विद्रोही सेनेगल की सेनाओं को राजधानी की तरफ बढ़ने से रोक रहे थे और इस मुठभेड़ में कुछ लोग हताहत भी हुए हैं. एक खबर के अनुसार सेनेगल के नो सैनिक मारे गये और 23 बुरी तरह घायल हुए हैं.

उधर गांबिया के राष्ट्रपति श्री जावरा ने मार्क्सवादी विद्रोहियों से अपील की है कि वे बंधकों को छोड़ कर सरकारी सेनाओं के सामने आत्मसमर्पण कर दें. रेडियो गांबिया से राष्ट्रपति की यह अपील प्रसारित हुई है. उन्होंने विद्रोहियों को आश्वासन दिया है कि यदि वे हथियार डाल देंगे और बंधकों को रिहा कर देंगे तो उन की जान बख्श दी जायेगी. इस समय विद्रोहियों के कब्जे में 30 बंधक हैं जिन में कुछ राष्ट्रपति के परिवार के लोग हैं. राष्ट्रपति ने इस बात की पुष्टि की है कि रेडियो पर विद्रोहियों का कब्जा हो गया था लेकिन अब वह सरकार के अधिकार में आ गया है. लेकिन किसी परिवहन या नाव पर ट्रांसमीटर लगा कर विद्रोही प्रसारण कर रहे हैं. राष्ट्रपति ने आम लोगों से भी काम पर लौट आने और दुकानें खोल देने की अपील की है. उन की अनुपस्थिति में विद्रोह के दौरान बाजार और दुकानों में लूटपाट हुई थी.

कहा जाता है कि विद्रोही नेता कुकली सांबा वामपंथी हैं. राष्ट्रपति श्री जावरा ने कहा है कि श्री सांबा को हथियार बाहर से मिल रहे हैं लेकिन उन्होंने किसी देश का नाम नहीं लिया.

पहले समाचारों के अनुसार राष्ट्रपति सर डवाडा जावरा के लंदन में शाही विवाह समारोह में शामिल होने के दौरान वहाँ सैनिक क्रांति (30 जुलाई) द्वारा राष्ट्रपति का तख्ता पलट दिया गया था. यह समाचार गांबिया रेडियो के हवाले से रायटर सहित अनेक समाचार एजेंसियों ने दिया था. विश्वस्त सूत्रों के अनुसार सैनिक क्रांति में अनेक लोगों के मरने का समाचार मिला था. सैनिक क्रांति के नेता कुकली सांबा बताये गये थे जिन्होंने लगभग 500 पुलिस सिपाहियों को ले कर ही सरकार का तख्ता उलटने का दावा किया और अपने आप को देश का राष्ट्रपति घोषित कर दिया.

बाद में रेडियो गांबिया से प्रसारण में कहा गया कि 12 सदस्यों की राष्ट्रीय क्रांतिकारी परिषद बना दी गयी है. इन में तीन सैनिक हैं. कुछ और नागरिकों को परिषद् में लिए जाने की संभावना है.

रेडियो गांबिया के अनुसार सैनिक क्रांति के दौरान राजधानी बांजुल में कुछ दूकानें भी लूटी गयीं. लेकिन बाद के समाचारों में सैनिक क्रांति को दबा देने की बात कही गयी थी. उधर सेनेगल की सेनाओं की राजधानी बांजुल की ओर बढ़ने की खबरें हैं. इतना तो स्पष्ट है कि अंतिम समाचार मिलने तक राजधानी विद्रोहियों के ही कब्जे में थी. सेनेगल सेनाओं के आते ही विद्रोहियों ने गांबिया रेडियो पर घोषणा कर दी कि यदि सेनेगल की सेनाएँ नहीं हटायी जाती हैं तो वे गांबिया में सेनेगल नागरिकों और यहाँ तक कि बच्चों तक की हत्या कर देंगे. लेकिन एक राजनयिक सूत्र के अनुसार सेनेगल सेनाएँ राजधानी पर कब्जा करने के लिए कृतसंकल्प हैं. विद्रोहियों का सफाया करने की उन की कार्रवाई जारी है. विद्रोहियों ने जिन संसद् सदस्यों को बंधक बना रखा है उन का भाग्य अभी अधर में लटका हुआ है. उधर सेनेगल की सेना के गांबिया की राजधानी की तरफ बढ़ते हुए विमानों से भी कार्रवाई कर रही थीं. पश्चिम अफ्रीका के इस छोटे से देश में विद्रोहियों ने सैनिक तानाशाही की स्थापना की घोषणा कर रखी है. राष्ट्रपति परिवार के सदस्यों को विद्रोहियों ने बंधक बना रखा है. विद्रोहियों के रेडियो के अनुसार राष्ट्रपति की प्रथम पत्नी, उस के पिता और उन के पाँच बच्चे इस समय विद्रोहियों के कब्जे में हैं और विद्रोहियों के रेडियो से बराबर घोषणा की जा रही है कि अगर सेनेगल की सेनाएँ नहीं हटायी जातीं तो हम राष्ट्रपति के परिवार के सभी सदस्यों को मार देंगे.

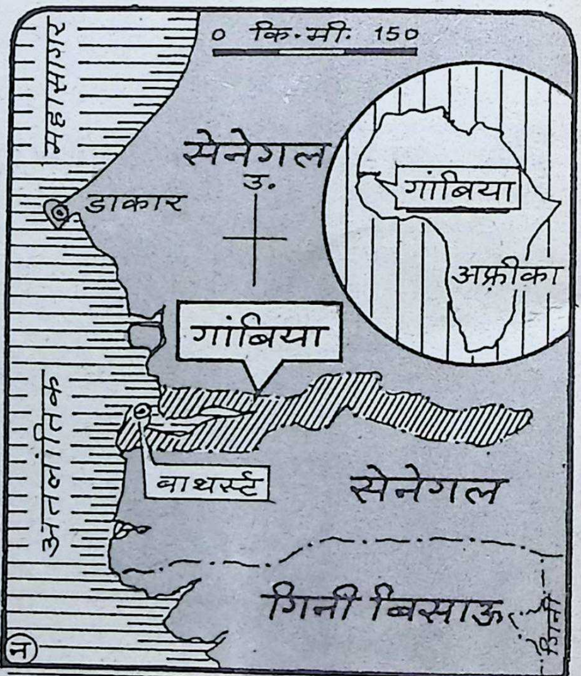

क्रांति के कारण : विद्रोहियों के अनुसार राष्ट्रपति जावरा की सरकार भाई भतीजावाद और भ्रष्टाचार के तरीके अपनाने की दोषी है. देश में चारों ओर रिश्वत का बाजार गर्म है और सामाजिक अन्याय का बोलबाला है. विद्रोहियों का कहना है कि इस समय गांबिया में अनाज की कमी है और महँगाई बढ़ गयी है जिस के खिलाफ नागरिक पिछले काफी समय से विरोध प्रकट करते रहे हैं और प्रदर्शन भी करते रहे हैं. संभवतः स्थिति विस्फोटक हो गयी और राष्ट्रपति जावरा की देश में अनुपस्थिति का लाभ उठा कर तख्ता पलटने का प्रयत्न किया गया. इस समय गांबिया की राजधानी बांजुल से बाहर की दुनिया का संपर्क कटा हुआ है. यहाँ तक कि वहाँ का हवाई अड्डा भी यातायात के लिए बंद है. क्रांतिकारी परिषद् की स्थापना होते ही संविधान स्थगित करने और संसद् भंग करने का एलान कर दिया गया था. राजनैतिक दलों पर भी प्रतिबंध लगा दिया गया.

गांबिया ब्रितानी संरक्षित प्रदेश है और गांबिया नदी पर बसा हुआ है. इस पश्चिमी अफ्रीकी देश का क्षेत्रफल कोई 40,034 वर्गमील है. पश्चिमी अफ्रीकी देशों के बहुत से लोग गांबिया में बसे हुए हैं जिन्हें अफ्रीकी ही माना जाता है. धान यहाँ की मुख्य फसल है. कपड़ा तथा दैनिक जरूरत की अन्य चीजें गांबिया को आयात करनी पड़ती हैं. स्थानीय उद्योग मुख्यतः मछली पकड़ने का है. गांबिया का अधिकतर व्यापार ब्रिटेन से ही होता है और ब्रिटेन की ओर से गांबिया को आयात की अनेक सुविधाएँ मिली हुई हैं.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

आँकड़े

सब से बड़ा लड़ाकू बनने की ललक

महाशक्ति कहलाने वाले देश लगातार अधिकाधिक खतरनाक और खर्चीली होती जा रही अणु-अस्त्र दौड़ में परस्पर होड़ कर रहे हैं. सब से बड़ा और श्रेष्ठ लड़ाकू बनने की ललक उन्हें लगभग पागल कर चुकी है. उन को बड़ा और आदर्श मानने वाले बाकी तमाम देश भी यथाशक्ति उसी दिशा में हाँफते घिसटते चले जा रहे हैं. फिर, ये सभी मिल कर सुबह शाम विश्व शांति की भी रट लगाते नहीं लजाते. दुनिया के ज्ञात इतिहास में कभी भी विध्वंसक शक्ति के प्रति इतना तीव्र अनुराग नहीं था, जितना आज है.

1969 और '70 में सारी दुनिया में (1979 के मूल्यों के आधार पर) युद्ध बल पर कुल 370 अरब डालर प्रतिवर्ष फूंके जा रहे थे, 1980 में यह रकम दुगुनी से थोड़ी ही कम तक जा पहुँची है. लगभग साढ़े छः सौ अरब डालर धन 1980 में सैन्य बल पर विश्व भर में खर्च किया गया.

संयुक्त राष्ट्रसंघ द्वारा एकत्र आँकड़ों के अनुसार पिछले वर्ष तक स्थिति यह थी कि नाटो देश अपने सकल राष्ट्रीय उत्पादन का कुल 55,952 अरब डालर (1977 के आधार पर) में से 3,137 अरब डालर अर्थात् 5.6 फीसदी रकम सैन्य शक्ति पर लगा रहे थे. वारसा पैक्ट वाले देश भी उन से कम नहीं, बढ़कर ही थे. वे अपने 16,410 अरब डालर राष्ट्रीय उत्पादन का 8.5 फीसदी यानी 1401 अरब डालर युद्ध तैयारी में झोंक रहे थे. सभी विकासशील देश उन का अनुसरण कर रहे थे और इन देशों के कुल राष्ट्रीय उत्पादन 21,570 अरब डालर (आधार उपर्युक्त) का 4.3 फीसदी अर्थात् 935 अरब डालर युद्ध की तैयारी में लग रहा था.

इन दिनों दुनिया में ढाई करोड़ सैनिक नियमित सैन्य सेवा में हैं. इस के अतिरिक्त अर्द्धसैन्य तथा सुरक्षित सैन्य सेवाओं में अनुमानत: 5 करोड़ लोग हैं. इन से जुड़ी प्रशासनिक व्यवस्था, अस्त्र अनुसंधान आदि में लगे लोगों की संख्या भी 3 करोड़ के लगभग है. इस प्रकार सेवा से प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप में जुड़े कुल कर्मचारियों की संख्या साढ़े दस करोड़ के लगभग है.

सैनिक बनाम सैनिक

संयुक्त राज्य अमेरिका में प्रति सैनिक पर 48 हजार 337 डालर प्रतिवर्ष व्यय होता है. प्रत्येक रूसी सैनिक पर हर साल खर्च होने वाली रकम इस की लगभग आधी है—24,490 डालर. इन की तुलना में एशियाई देशों में जापान, संयुक्त अरब अमीरात, ईरान और इस्राइल ये 4 देश हैं जहां प्रति सैनिक प्रति वर्ष व्यय क्रमश: 28,824, 24,346, 22,965 तथा 23,031 डालर है. तेल संपदा से धनी बने कुवैत का प्रति सैनिक प्रति वर्ष अवश्य दुनिया में सर्वाधिक है—74,700 डालर.

चीन अपने प्रति सैनिक पर प्रति वर्ष जो खर्च करता है, वह उपर्युक्त इकाई के आधार पर 5,570 डालर ठहरता है जबकि भारत का यह व्यय है सिर्फ 2,739 डालर. और पाकिस्तान का 2,152 डालर.

अमेरिका-रूस और एशिया के इन दो छोरों के बीच अन्य क्षेत्रों की तरह, सैन्य व्यय के क्षेत्र में भी यूरोप ही आता है. यूरोप के कई देश जैसे ब्रिटेन, स्वीडन, स्विट्ज़रलैंड, फ्रांस, डेनमार्क, बेल्जियम, पश्चिम जर्मनी, नार्वे, नीदरलैंड, लक्जमबर्ग आदि का प्रति सैनिक प्रतिवर्ष सार्वजनिक व्यय सोवियत संघ से अधिक है. यथा ब्रिटेन —35074 डालर, स्वीडन-38,826 डालर, स्विट्ज़रलैंड-68,421 डालर (यह राशि अमेरिका से भी ज्यादा है), फ्रांस-29705 डालर, डेन्मार्क-30 हजार 86 डालर, बेल्जियम-29,128 डालर, पं. जर्मनी-35,417 डालर, लक्जम बर्ग-29,001 डालर आदि. स्पष्ट है कि सैनिक और सैनिक में देशों के हिसाब से विषमता है. यद्यपि जोखिम और मेहनत की दृष्टि से दो सैनिकों के बीच वैसी विषमता नहीं होती.

अफ्रीकी देशों में प्रति सैनिक प्रतिवर्ष सार्वजनिक व्यय एशियायी देशों जैसा ही है. वहां जिंबाब्वे (20,300 डालर), जांबिया (21,429 डालर), और गैबान (18,000 डालर) को छोड़ कर शेष दोनों का यह खर्च लगभग 2 से 8 हजार के बीच में है. मारीशस और स्वाज़ीलैंड में यह खर्च एशिया के नेपाल (750), बर्मा (900) जैसे देशों की तरह ही कम है—1 हजार डालर. सिर्फ दक्षिण अफ्रीका का यह व्यय बहुत था—38,891 डालर.

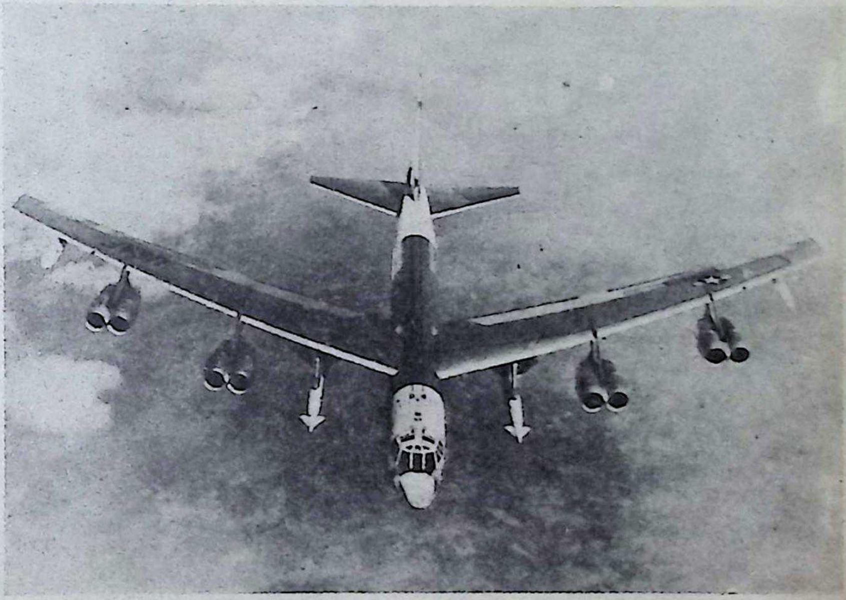

अमेरिकी बमवर्षक बी-52:...इससे बचो

लड़ने को उकसावा.

अमेरिका, रूस और पश्चिम यूरोप के धनी मानी देश विकासशील देशों को लड़ने के लिए उकसावा देने के लिए अस्त्रों का निर्यात भी करते हैं. 1978 में अमेरिका ने कुल 21 अरब डालर के अस्त्र शस्त्र बाहर बेचे. इस में से दो तिहाई से ज्यादा यानी 14 अरब डालर से ज्यादा की रकम विकासशील देशों से वसूली गयी या उन पर कर्ज लादा गया. रूस ने लगभग इस से आधी कीमत के अस्त्र इन देशों को बेचे, ऐसा अनुमान है. पश्चिमी यूरोप के देशों का नंबर तीसरा रहा.

अणु विस्फोट

1945 के पहले अणु विस्फोट के बाद से अब तक अमेरिका 777 अणु विस्फोट कर चुका है. सोवियत संघ ने 426 विस्फोट किये हैं. फ्रांस-85, ब्रिटेन 30, चीन 25 तथा भारत 1.

इन दिनों कुल 39 देशों में 500 से ज्यादा अणु शक्ति संयंत्र कार्यरत हैं. यह विदित संख्या हैं. अज्ञात संयंत्रों की कुल संख्या इस से भी ज्यादा होने का अनुमान है?

जापान में 1945 में जो अमेरिकी अणुबम डाला गया था, उस से कई गुना ज्यादा शक्तिशाली 50 हजार से ज्यादा अणु अस्त्र इन दिनों दुनिया में इस्तेमाल के इंतजार में हैं. उन की कुल विस्फोट क्षमता उस शक्ति से दस लाख गुनी से ज्यादा है, जिसके इस्तेमाल से कुछ ही क्षणों में हिरोशिमा तबाह हो गया था.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

भारतीय टीम : भावना और संभावना

इस महीने भारतीय हाकी टीम यूरोप का दौरा करने वाली है, फिर भारत और पाकिस्तान के बीच चार टेस्टों की शृंखला, 29 दिसंबर से बंबई में पांचवीं विश्व कप (हाकी) प्रतियोगिता, भारतीय टीम का चुनाव, और सुरजीत सिंह का पुनः कप्तान बनना आदि इन सब बातों की जानकारी तो हर जानकार हाकी प्रेमी को है लेकिन हाकी का बड़े से बड़ा पंडित भी भारतीय टीम की हार जीत की संभावनाओं पर किसी प्रकार की टीका टिप्पणी करने या कि भविष्यवाणी करने में अपनी असमर्थता व्यक्त कर रहा है. और तो और भूतपूर्व ओलिंपिक कप्तान बलबीर सिंह (1975 में विश्व कप जीतने वाली भारतीय टीम के मैनेजर और प्रशिक्षक) भी इस बार मौन साधे रहे.

हर बार की तरह इस बार भी यह दावा किया जा रहा है कि टीम में युवा और अनुभवी दोनों खिलाड़ियों को शामिल किया गया है. जिस सुरजीत सिंह को अखिल भारतीय खेल-कूद परिषद के अध्यक्ष फ़ील्ड मार्शल मानेकशाह ने अनुशासनहीनता के आरोप में टीम से बाहर किया था उसी को भारतीय हाकी संघ के अध्यक्ष इंदर मोहन महाजन ने टीम का कप्तान नियुक्त किया है.

भारतीय हाकी चयन समिति के सदस्यों के नाम हैं : महाजन (अध्यक्ष), डा. नंदी सिंह, राजगोपाल, गुरबख्श सिंह, जमनलाल शर्मा और राज कुमार.

सुरजीत सिंह (30) टीम में सब से वरिष्ठ खिलाड़ी हैं जब कि उत्तर प्रदेश के सुजीत कुमार (19) सब से कम उम्र के खिलाड़ी हैं. खिलाड़ियों की औसत उम्र 23 वर्ष है. खिलाड़ियों के नाम इस प्रकार हैं:—

गोली : अशोक दीवान (उप-कप्तान), रेलवे), एम.आर. नेगी (बंबई).

फुलबैक : सुरजीत सिंह (कप्तान, पंजाब), राजेंद्र सिंह (रेलवे), विनीत कुमार (एयर-लाइंस).

हाफ बैक : एम.एम. सोमैया (बंबई), गुरमेल सिंह (पंजाब), रविंदर पाल सिंह (उ. प्र.), ओंकार सिंह (रेलवे) तथा सुजीत कुमार (उ.प्र.).

राइट आउट : एम.आर. कौशिक (बंबई), चरणजीत कुमार (पंजाब), राइट इन : मेरवीन फर्नांडिस (एयर लाइंस), मारसेलस गोम्स (बंबई), सेंटर फारवर्ड सुरेंद्र सिंह सोढी

सुरजीत सिंह : अपना हक़

(पंजाब), लेफ्ट इन : मोहम्मद शाहिद (उ.प्र.), लेफ्ट आउट : जफर इकबाल (एयर लाइंस) और सैयद अली (उ.प्र.)

सुरक्षित खिलाड़ी: अरविंद छाबड़ा (एयर-लाइंस), वीरेंद्र बहादुर (एयरलाइंस), कारवाल्हो (बंबई), जोसेफ तिर्की (बिहार), रविकुमार (रेलवे), राजेंद्र सिंह (विश्वविद्यालय) और अमरजीत सिंह राणा (रेलवे)

आप शायद यह सोच रहे होंगे कि हर बार तो टीम में 16 खिलाड़ी रखे जाते हैं फिर इस बार 18 खिलाड़ियों की टीम क्यों घोषित की गयी. यह भी क्या एक नया प्रयोग है. चयन समिति के अध्यक्ष का कहना है कि टीम में अधिकांश नये खिलाड़ियों को रखा गया है. यूरोपीय दौरे पर इन्हें काफी अनुभव प्राप्त होगा. 'क्या यही खिलाड़ी एशियाई खेलों में भी भाग लेंगे. इसके जवाब में उनका कहना है कि ज़रूरत पड़ने पर इन में फेरबदल भी किया जा सकता है. एशियाई खेलों में उन खिलाड़ियों को प्राथमिकता दी जायेगी जो घास के मैदान से सीधे कृत्रिम मैदान पर उतना ही अच्छा प्रदर्शन दिखा सकें.

मतलब साफ है पांचवीं विश्व कप (हाकी) प्रतियोगिता का आयोजन घास के मैदान पर किया जायेगा और एशियाई खेलों का अयोजन कृत्रिम घास के मैदानों पर.

प्रशिक्षकों की प्रतिक्रिया : भारतीय टीम की घोषणा से कुछ दिन पहले प्रशिक्षकों की जो प्रतिक्रिया विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित हुई वह बहुत उत्साहवर्द्धक नहीं थी. काफी समय तक तो इस बात पर विवाद चलता रहा कि गोली को मुखावरण (नक़ाब) धारण करना चाहिए या नहीं. प्रशिक्षकों और खिलाड़ियों की मिलीजुली राय थी कि इस से फायदा कम और नुकसान ज्यादा होता है. इसके लिए गोली को शुरू से ही इस का अभ्यास करवाना चाहिए वरना लेने के देने पड़ सकते हैं क्यों कि इससे गेंद की दिशा परखने में काफी व्यवधान पहुँचता है.

जहाँ तक खेल की कलात्मकता का सवाल है एक ज़माने में भारत को इसका जगत्‌गुरु कहा जाता था लेकिन अब तो गेंद रोकने, पास देने और निशाना लगाने जैसी मूलभूत तकनीक में भी हम लोग काफी पीछे रह गये हैं. इस समय हमारी सब से बड़ी कमजोरी मध्य पंक्ति की है. यदि हमने इसमें कोई सुधार नहीं किया तो यही कहा जायेगा कि मस्क्वा ओलिंपिक में हमारी जीत संयोग से हुई है संघर्ष से नहीं.

भारतीय टीम के मुख्य प्रशिक्षक **हरमीक सिंह** और उनके सहयोगी **पीटर देशमुख** तथा सेना के **बलबीर सिंह** इस समय विभिन्न खिलाड़ियों के बीच टालमेल बिठाने में जुटे हैं. देशमुख यदि गोलरक्षण में सुधार के नये नये तरीकों का प्रयोग कर रहे हैं तो हरमीक सिंह सीधे गोल करने पर अधिक ज़ोर दे रहे हैं. उन का कहना है कि पेनल्टी कार्नर को गोल में बदलने की प्रक्रिया को सुधारा तो जा रहा है लेकिन दूसरे देश इस मामले में हमसे बहुत आगे हैं.

जहाँ तक अग्रिम पंक्ति का सवाल है उसमें किसी को किसी प्रकार की कोई कमी या खामी नहीं दिखायी देती. उनका कहना है कि सुरेंद्रसिंह सोढी, कौशिक, चरणजीत सिंह, फरनांडिस, मोहम्मद शाहिद और जफ़र इकबाल जैसे खिलाड़ी विरोधी दल की मजबूत से मजबूत रक्षा पंक्ति को तोड़ने की क्षमता रखते हैं.

लेकिन जब इन प्रशिक्षकों से यह पूछा जाता

बवासीर के मस्से बिना ऑपरेशन सुखाइये
अनोखी दवा से खुजली और दर्द भगाइये

न्यू यॉर्क। चिकित्सा-विज्ञान ने बवासीर की एक ऐसी दवा की खोज की है जो मस्सों (बवासीर) के अधिकांश रोगियों को बिना ऑपरेशन ही अच्छा कर देती है। इसके, कितने ही रोगियों पर हुए 'बहुत ही अच्छे परिणामों' की डॉक्टरों ने पुष्टि की है। कहते हैं, सालों पुराने मस्से सूखते गये, घाव भरते गये और बहुत जल्दी पीड़ा और खुजली मिट गयी। यह नयी औषधि प्रेपरेशन एच ऑइंटमेंट—मस्सों को सुखाने और चिकनाहट देकर जलन से आराम दिलाने में तो मदद देती है, इससे शौच के समय भी कम तकलीफ़ होती है।

प्रेपरेशन एच की ३० ग्रा. और ५० ग्रा. की ट्यूब, एप्लिकेटर के साथ सभी केमिस्ट्स के यहां मिलती है।

* Regd. User of TM: Geoffrey Manners & Co. Ltd. 252-PH-52 HIN

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

है कि क्या आप विश्व कप जीतने की क्षमता रखते हैं तो वह बड़ी सफाई और चतुराई से इसका जवाब देते हैं 'इस बार विश्व कप में हमारा प्रारंभिक 'ड्रा' बहुत कठिन है और तो और सेमी-फाइनल तक पहुँचने के लिए हमें अपने ग्रुप में **हालैंड, सोवियत संघ, आस्ट्रेलिया,** और **मलयेशिया** जैसी मजबूत टीमों से भिड़ना होगा. दूसरे शब्दों में यह कि सेमी-फाइनल तक पहुँचने के लिए भी भारत को एड़ी चोटी का जोर लगाना होगा.

फोरहॅन्स
दाँतों के डॉक्टर का बनाया हुआ टूथपेस्ट

दाँतों को साफ़ करने के साथ-साथ मसूड़ों को मज़बूत बनाने में मदद करता है

मसूड़ों की तकलीफ़ से स्वस्थ दाँत भी गिर सकते हैं

दाँतों के डॉक्टर कहते हैं कि दाँतों को ठीक से साफ़ न किया जाय तो कीटाणुओं की अदृश्य परत, जिसे प्लाक कहते हैं, दाँतों और मसूड़ों पर जमा होने लगती है। आगे चलकर यह टारटर बन जाती है जो मसूड़ों को कमज़ोर बनाकर उन्हें सिकोड़ती है जिससे स्वस्थ दाँत भी गिर सकते हैं। मसूड़ों की तकलीफ़ से तन्दुरुस्ती भी खराब हो सकती है।

फोरहॅन्स- मसूड़ों की रक्षा के लिए

डॉक्टर फोरहॅन्स का विशेष फ़ॉर्मूला अपने असरकारक एस्ट्रिंजेंट के कारण मसूड़ों को मजबूत बनाकर उन्हें तकलीफ़ से दूर रखने में आपकी मदद करता है।

इसलिये फोरहॅन्स टूथपेस्ट और फोरहॅन्स डबल एक्शन टूथब्रश से अपने दाँतों की सफ़ाई और मसूड़ों की

25IF-222 HIN

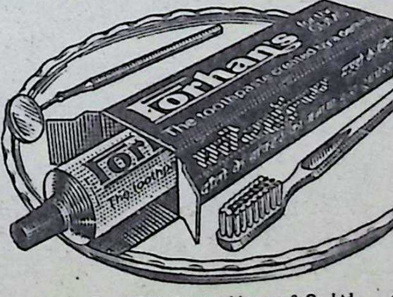

फोरहॅन्स
मसूड़ों के लिए

Regd. T.M: Geoffrey Manners & Co. Ltd.

वही हाकी : वही हठ : जब जब भी किसी अंतरराष्ट्रीय प्रतियोगिता में भारतीय टीम को हार का सामना करना पड़ा है तब तब यही कहा गया है कि बार बार प्रशिक्षक या कप्तान को बदलना उचित नहीं. प्रशिक्षक को कम से कम चार वर्ष के लिए नियुक्त किया जाना चाहिए. लेकिन होता वही है जो भारतीय हाकी संघ को मंजूर होता है. 1980 में मस्क्वा में हुए ओलिंपिक खेलों में भारतीय टीम का नेतृत्व वासुदेवन भास्करन ने किया था और इस बार सुरजीत सिंह को कप्तान बनाया गया है. यदि आप भारतीय हाकी के 15-20 साल पुराने इतिहास पर निगाह डालें तो आपको पता चलेगा कि कभी एक कप्तान को तीन साल के बाद फिर कप्तान बना दिया गया तो कभी एक ही प्रतियोगिता के बाद कप्तान की छुट्टी कर दी गयी.

भारतीय हाकी प्रेमियों को अच्छी तरह से याद होगा कि पिछले दिसंबर में भारतीय हाकी संघ की बागडोर दूसरे पदाधिकारियों के हाथ आ गयी थी और उन्होंने आते ही यह घोषणा कर दी थी कि भारत कराची में होने वाली 'चैंपियन कप' प्रतियोगिता में भाग नहीं लेगा. लोगों ने उसी समय हवा का रुख पहचान लिया था. यह बात भी किसी से छिपी नहीं है कि यदि सुरजीत सिंह को अनुशासनहीनता के आरोप में (वह बिना अनुमति प्राप्त किये प्रशिक्षण शिविर छोड़ कर अपने घर चले गये थे). न हटाया जाता तो तब वही टीम के कप्तान बनते. इस बार यह सारा नाटक उनको पुनः कप्तान बनाने के लिए किया गया.

पिछले दिनों जब एक पत्रकार ने श्री इंदर मोहन महाजन से भास्करन के बारे में पूछा तो उन्होंने कहा : 'नहीं, वह काफी खेल चुका है. 1982 के एशियाई खेलों तक वह फार्म में नहीं रह सकता.' लेकिन जब उसे दक्षिण क्षेत्र (देखिए **दिनमान** 7-13 जून '81) की टीम में ही शामिल नहीं किया गया तो लोगों को चयन समिति के इरादों का आभास हो गया. दूसरे शब्दों में यह कि तब मस्क्वा से लौटी टीम में से केवल भास्करन को ही दूध से मक्खी की तरह निकाला गया था.

भास्करन को इस बात का दुख नहीं है कि उन्हें कप्तान पद से क्यों हटा दिया गया लेकिन उन्हें इस बात का जरूर दुख है कि उन्हें इस योग्य भी नहीं समझा गया कि दक्षिण क्षेत्र की टीम में शामिल कर लिया जाये. एक कप्तान दूसरे कप्तान के अधीन भी तो खेल सकता है. अजीतपाल सिंह जैसा खिलाड़ी हरमीक, गणेश और सुरजीत के अधीन खेल चुका है. इसी प्रकार हरचिंदर, गणेश, फिलिप्स और अशोक भी दूसरे खिलाड़ियों की कप्तानी में खेल चुके हैं. फिर मुझे सुरजीत के अधीन खेलने में क्या आपत्ति हो सकती है. यह सब भारतीय हाकी संघ के अधिकारियों की मिलीभगत का ही परिणाम है. जैसे टीम के खिलाड़ी बदलते रहते

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

हैं वैसे कप्तान भी बदलते रहते हैं. लेकिन जीती हुई टीम के कप्तान को इस तरह निकाल बाहर करने की मिसाल पहली बार ही देखने को मिली.

यदि आप आज भी भास्करन से मिलें तो वह यही कहेंगे कि मुझे जिस ढंग से निकाला गया वह ढंग मुझे अच्छा नहीं लगा. इस से प्रेस जगत में भारतीय हाकी संघ की ही आलोचना हुई. यदि मुझे टीम से अलग ही करना था तो ऐसा मध्यमार्ग भी अपनाया जा सकता था जिससे दोनों की लाज रह जाती. उस स्थिति में मुझे भी उतना दुख नहीं होता. दक्षिण क्षेत्र की टीम की घोषणा करने से पहले मुझे अधिकारी अपने पास बुलाते और कहते कि तुम्हारा प्रदर्शन संतोषजनक नहीं है. मैं उनसे केवल इतना निवेदन करता कि आप केवल दो घंटे तक और रुक जायें. मैं एक प्रेस सम्मेलन बुलाता और अपने आप संन्यास की घोषणा कर देता. इस से दोनों पक्षों की लाज रह जाती. पर यह भारतीय हाकी है. यहां सब चलता है. इसीलिए तो इसका यह हाल है.

संक्षिप्त विज्ञापन

शिक्षा संबंधी

कहानी-कला, लेख-रचना, प्रैक्टिकल इंगलिश, पत्रकारिता, पत्रिका-संचालन और पटकथा व टीवी लेखन का घर बैठे पत्राचार द्वारा अध्ययन करें. अपने विषय की विवरणी मँगाइये. कहानी-लेखन महाविद्यालय, रजि (द), अम्बाला-छावनी-133001.

अपनी अंग्रेजी सुधारें, हमारे 'अच्छी अंग्रेजी' पत्राचार पाठ्यक्रम में प्रवेश लें. विवरणी हेतु लिखें. इंस्टीट्यूट आफ जर्नलिज्म (द), पोस्ट बाक्स 3583, नयी दिल्ली-110024.

व्यापार आमंत्रण

सस्ते उत्तम साबुन, सौन्दर्य प्रसाधन क्रीम, स्नो, पाउडर इत्यादि "101 स्वनिर्मित व्यापार" पूरा प्रशिक्षण रियायती मूल्य में मंगावें. पता--इंडस्ट्रीयल कोर्स, बुक सेन्टर, अलीगढ़-25.

रिक्त स्थान

आवश्यकता है प्रचारकों की. कमीशन या दैनिक भत्ते पर कार्य के इच्छुक युवक युवतियां लिखें : युवक-कान्फ्रेंस, अन्नपूर्णा मार्ग, इन्दौर-452009. (म.प्र.)

युवा प्रतिनिधि चाहिए. लिखें : युवास्वप्न साप्ताहिक, कोटद्वार-246149.

इतिहास

बेगारी की यूरोपीय परंपरा

बंधुआ मजदूरी अंग्रेजों की देन है

धर्मपाल

(18 और 19 वीं शताब्दी के भारतीय इतिहास के अध्येता धर्मपाल के लेख **आधुनिक भारत में क्रूरता, कंगाली और दासता का उद्भव और मानवीय गरिमा तथा आचरणों के प्रतिमान का** क्षय की यह तीसरी और समापन किस्त है. लेख **गांधी शांति प्रतिष्ठान** द्वारा करवाये गये बंधुआ मजदूरी के सर्वेक्षण की रिपोर्ट की भूमिका के रूप में लिखा गया था. मूल अंग्रेजी में लिखे गये लेख का संपादित और भाषांतरित रूप हमने छापा है. पिछले दो अंकों में छपी दो किस्तों में अंग्रेजी साम्राज्य की स्थापना के फलस्वरूप भारत में राज्य के संगठन और लोगों के प्रति उसकी दृष्टि में जो फर्क आया तथा जिस तरह कंगाली फैली इस का विवेचन था. **इस किस्त में उस सर्वमुखी राजनैतिक दमन के बारे में बताया गया है जिसने भारतीय समाज को पस्त करने में निर्णायक भूमिका निबाही और बंधुआ मजदूरी जैसी प्रथा को जन्म दिया.**)

इस प्रकार के सामान्य वातावरण में, जहां धन का अधिकाधिक अर्जन और संग्रह न केवल बँध वरन् ब्रिटिश हित में भी माना जाता था अगर चाहे जैसे धन बनाने के हर संभव हथकंडे और तरीके अपनाने की आपाधापी मच जाये, तो क्या अचरज. 1750 के बाद बंगाल इलाके में राबर्ट क्लाइव तथा उनके साथियों द्वारा ली गई विशाल 'भेंटों' के बारे में बहुत कुछ लिखा गया है. पर ब्रिटिश आधिपत्य के तत्काल बाद ही ऐसी चीजें रस्म रिवाज बन गयी और एक अलग ही जीवन क्रम का आधार बनने लगीं. शुरू में नमक बनाने और बेचने या बुनकरों पर पूर्णतः नियंत्रण प्राप्त करने, अथवा सैनिक असैनिक अफसरों द्वारा अन्य धंधे चलाने और उन पर कर चुंगी वगैरह की छूट तथा माफी आदि के प्रयासों में अंग्रेज नागरिकों को निजी संपत्ति बढ़ाने के लिए मदद देने का सिलसिला शुरू हुआ, जो बाद में धनोपार्जन की अंधी होड़ में बदलता चला गया.

ब्रिटिश शासकों ने धन कमाने का एक और जटिल मार्ग ढूंढ़ निकाला. किसी भी इलाके के शासक को ब्रिटिश संरक्षण में लेने के बाद वे पहले उस शासक को बाध्य करते कि वह अपनी रक्षा के लिए ब्रिटिश फौजें तैनात करना स्वीकार करे. इसका असली मतलब होता कि वह देशी शासक ब्रिटिश फौज का खर्चा खुद वहन करे, जैसे अर्काट के नवाब को बाध्य किया गया. देशी शासक के पास प्रायः पर्याप्त धन न होता. तब ब्रिटिश अफसर सौदागर, कौंसिल-सदस्य और गवर्नर आदि 36 से 60 फीसदी प्रतिवर्ष तक की भयानक ऊंची ब्याज दरों पर देशी शासक को रकम उधार देते. 1755 से 1800 तक ब्याज की ये ही दरें वसूली जाती थीं. इस कर्ज के बदले में पूरा इलाका रेहन रख लिया जाता. इस प्रक्रिया की एक झलक लार्ड होबर्ट की 1795 की इस अवलोकन टिप्पणी में मिल सकती है, होबर्ट उन दिनों मद्रास प्रेसीडेंसी के गवर्नर थे:

"योरोपीय साहूकार अपने नौकरों चपरासियों को संबंधित इलाके में कर्ज वसूलने भेजता है. उनके साथ नवाब का फरमान होता है कि वहां के सिपाही इनकी मदद करें अर्थात इनकी आज्ञा मानें और कर्ज वसूल करवायें. यदि रैयत अपनी हैसियत के बाहर का और अपनी जानकारी के बाहर का ऐसा कर्ज देने से इंकार करती है तब उसे छड़ों से पीटा जाता है और 'बट्टा' देने को बाध्य किया जाता है. यह बट्टा उन नौकरों-रक्षकों चपरासियों का रोजाना भत्ता होता है, जो कि रैयत को उचित सजा देने के लिए भेजे जाते हैं. फिर उसके अनाज भंडार और जानवरों का कुछ अंश छीन लिया जाता है."

ब्रिटिश दृष्टिकोण यह था कि आखिर यह सारा ही धन अंततः पहुँचता तो ब्रिटेन ही है. योरोपीय लोगों का सामान्य दृष्टिकोण यही था कि शेष सारी दुनिया को उनके लक्ष्यों की पूर्ति में सहायक बनना चाहिए. और इस हेतु अधीनता स्वीकार करनी चाहिए. ब्रिटेन का समाज भी अपने प्रतिभाशाली पुत्रों से यही अपेक्षा रखता था कि वे ब्रिटिश लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सारी दुनिया को ब्रिटेन के अधीन लाएँ. इसीलिए भारत आने वाला अच्छा से अच्छा अंग्रेज भी चाहता यही था कि वह यहां रह कर इतना कमा ले, जिससे स्वदेश लौट कर वह गरिमा और प्रतिष्ठा भरा जीवन अपने समाज में जी सके. कारण यह था कि जैसा कि वारेन हेस्टिंग्ज के मित्र साइकस ने 25 नवंबर 1779 को उसे एक पत्र में लिखा कि उन दिनों बिना ऐसे विशिष्ट सौभाग्य के ब्रिटेन में जन-जीवन दूभर स्थिति में था.

धन और उस के उपार्जकों को ऐसी सर्वोपरिता और पवित्रता प्रदान करने वाले वर्ग के अधीन भारतीय समाज का सामान्य जीवन पीड़ा और दमन से भर उठा. लोगों ने

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बार बार विद्रोह किया. गोरिल्ला-युद्ध भी जगह जगह छिड़े. किसानों और नागरिकों ने प्रतिरोध एवं प्रतिकार किया. वे प्रतिकार के ऐसे उपाय अपनाते रहे जिन से कि वे (भारतीय) लंबे समय से परिचित थे और अन्याय तथा उत्पीड़न के विरुद्ध जिन उपायों को वे स्वाभाविक मानते थे. पर वे विफल रहे. उन का दुःख बढ़ता गया और बढ़ती गयी दरिद्रता. धीरे-धीरे भारतीय जन जीवन की सौम्यता भी खत्म हो चली और क्रूरता प्रतिष्ठित होने लगी. भारतीय समाज दो हिस्सों में बंट गया. वह दो देश बन गया—एक था मुट्ठी भर शक्तिसंपन्न लोगों का देश, जिसने विदेशी जीवन पद्धति से सहअस्तित्व सीख लिया, दूसरा था निर्बल लोगों का देश, जो कंगाली, हीनता और दीनता की ओर लगातार ठेला जाने लगा. राज्य दोनों का जबरन इस्तेमाल करने लगा तथा बाद में ऐसे इस्तेमाल को भारतीय जीवन की ही पारंपरिक प्रथा प्रचारित कर दिया गया.

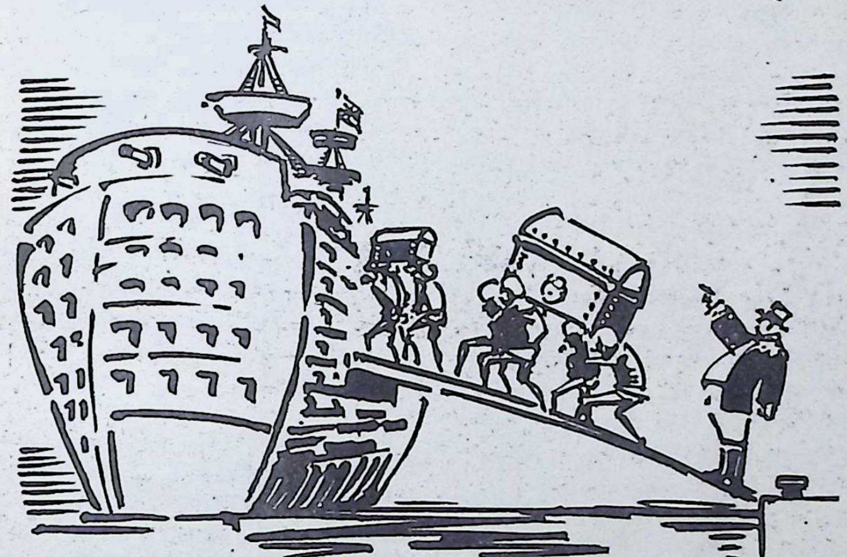

ब्रिटिश शासकों ने शासितों के मन में यह छाप छोड़ने के लिए कि अंग्रेजी सेना अपराजेय है हर संभव उपाय अपनाये. वे सैन्य बल भी लगातार बढ़ाते गये. 1850 में ब्रिटिश फौज की संख्या 3 लाख तक जा पहुंची. इन में थे आधे यूरोपीय, शेष भारतीय. ये सेनाएँ जब इधर से उधर को कूंच करतीं तो वे जबरन मजदूरी के लिए लोगों को पकड़ कर उन से सेवा टहल करातीं. हाउस ऑफ कामंस की चयन समिति ने 1857 की अपनी रपट में लिखा कि 'भारत के कुछ हिस्सों में जबरिया मजदूरी की प्रथा जारी है. सरकार के लोग रैयत को पकड़ लेते हैं. इस से जनता में क्षोभ बढ़ता है.

इस के पहले 1855 में एक भूतपूर्व गवर्नर जनरल लार्ड एलेनबरो ने तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कैनिंग को एक चिट्ठी लिख कर बताया कि उन्होंने खुद 15 साल पहले देखा था कि शिमला पहाड़ी क्षेत्र के हजारों लोगों को जबरन मजदूरी के लिए बाध्य किया गया. बाद में यह प्रथा इतनी ज्यादा चल पड़ी कि कुमायूं-गढ़वाल के कमिश्नर ने अपने इलाके में ऐसी प्रथा के खात्मे की कोशिश का खुला विरोध किया. सिर्फ पहाड़ी इलाकों में ही इस क्रूर प्रथा का आतंक नहीं फैला था पूरे ब्रिटिश भारत में राज्य द्वारा यह प्रथा फैलायी गयी जो कि यूरोप में बेगार-प्रथा (कोरवी) कहलाती थी. इस के पक्ष में भेजी गयी अपनी एक टिप्पणी में भारत सरकार के गृह विभाग के सचिव ने लंदन में राज्य सचिव को लिखा कि "जनता के हित में व्यक्ति की असुविधा कुछ अनुचित नहीं." स्पष्टतः यहाँ शासन के हित को ही जनहित बताया जा रहा था.

अक्तूबर 1882 में तत्कालीन वायसराय लार्ड रिपन ने सड़कों आदि की मरम्मत के लिए बेगार कराये जाने को उचित ठहराया. हालात का एक जायजा 1819 में निजाम हैदराबाद की रियासत में ब्रिटिश रेजीडेंट द्वारा तत्कालीन गवर्नर जनरल को लिखे इस पत्रांश से मिल सकता है; "यह आदत नहीं रोकी गयी तो बदनामी होगी. बेगारों को पकड़ कर मनचाहे समय तक रोक रखा जाता है. दुकानदारों, कारीगरों, किसानों, निचली जातियों के लोगों और कई बार गांव के स्थानीय अफसरों को भी जबरन पकड़ लिया जाता है. उन्हें अपना काम नहीं करने दे कर बोझा ढोने के लिए मजबूर किया जाता है. ब्रिगेडियर जनरल डेवटन की एक टुकड़ी ने जैसे ही मार्च शुरू किया और वे हैदराबाद की सीमा में ही थे, उन्होंने खेत में हल जोतते बैल हलों से छुड़ा लिये और उन पर बोझा ढुलवाने लगे. गांव के गांव उजड़ रहे हैं. लोग कुली बनाये जाने से डर कर भाग खड़े होते हैं. सड़कों के किनारे के गांव तो तेजी से खाली हो रहे हैं."

अप्रैल 1921 में मद्रास के गवर्नर थामस मुनरो ने अपनी टिप्पणी में लिखा कि "बेगारी का उत्पीड़न इतना ज्यादा है कि हमें उस के पंद्रहवें हिस्से तक की भी खबर नहीं लग पाती. दूसरे देशों में जहाँ लोग सड़कें बनने से खुश होते हैं यहाँ के ग्रामीण सड़क बनती देख आतंकित हो उठते हैं. ऐसे कई मामले हैं, जहाँ गाँव की पूरी रैयत भाग खड़ी हुई और नयी जगह जा बसी. तहसीलदार अनाज वसूलने और लोगों से बेगार कराने हेतु पड़ाव के आसपास के इलाकों में चपरासी और सिपाही भेजता है. लोगों से जो चीजें ली जाती हैं, उन के वाजिब दाम कभी नहीं दिये जाते. जो पैसा दिया भी जाता है, उसे राजस्व विभाग के लोग हड़प लेते हैं."

धीरे धीरे उत्पीड़न बढ़ता गया और भारतीय जनसाधारण दरिद्र बनता गया. जब कंगाली बढ़ गयी, तो जो पूरी तरह लुटे हुए भूखे लोग थे वे कुछ पैसों की लालच में बेगारी के लिए खुद ही प्रस्तुत होने लगे, ताकि भूख से तड़प रहे अपने और परिवार के पेट में कुछ तो डाला जा सके. पर यह बहुत बाद की बात है. पहले तो हर जगह विरोध हुआ. 1842 में कुमाऊं के लोगों ने इस का तीव्र विरोध किया और शिकायत की. रपट मांगे जाने पर कुमाऊं के कमिश्नर ने लिखा--"1841-42 में और 1843 की पहली तिमाही में इतने लोग इन कामों के लिए मांगे गये—(1) कार्यकारी अभियंता, कुमाऊं के लिए 4828. (2). अल्मोड़ा के सैनिक अधिकारियों के लिए (तथा सिपाही—लाइन की घास के लिए भी) 6186 (3) लाहूघाट और पैतरगढ़ के सैनिक विभाग एवं कार्यकारी विभाग हेतु 9261, (4) अल्मोड़ा भीमताल एवं हवलबाग की सरकारी चाय नरसरी के लिए 1900, (5) सरकारी त्रिकोणमितीय सर्वे के अफसरों के लिए 347. इस प्रकार कुल 22 हजार पांच सौ बाईस लोगों से काम कराया गया. यह जबरिया काम पूरी जानकारी के साथ कराया गया. मेरी समझ है कि इस प्रथा को पूरी तरह समाप्त करने से सरकार पर खर्च का बोझ पड़ेगा." ऊपर प्रस्तुत सूची में नागरिक अफसरों द्वारा अपने दौरों के समय जिन पोर्टरों से काम कराया गया, उन की संख्या शामिल नहीं है.

निजाम हैदराबाद सरकार द्वारा 15 जून 1844 को मिलिटरी बोर्ड के समक्ष पेश एक सूची में उन कारीगरों व व्यापारियों का विवरण है, जो कि मिलिटरी शिविरों में जबरन बुलाये जाते थे. इन में ये लोग शामिल हैं : 1. आटा दाल बिक्रेता 2. हलवाई 3. पंसारी 4. रुपया व रेजगारी बदलने वाले 5. सर्राफ 6. तंबाकू बिक्रेता 7. तमोली 8. सूजी बनाने वाले 9. बेकर या नानबाई 10. भटियारा 11. कुंजड़े 12. मछुआरे 13. बिसाती 14. बारी 15. ततरा 16.

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

कसाई 17. मांस बिक्रेता 18. मोची 19. खोजी 20. रुई धुनने वाले, 21. तेली 22. भड़भूंजा 23. घीवाला 24. ऊंटवाला 25. लोहार 26. बढ़ई 27. सोनार 28. मुर्गेवाला 29. कुम्हार 30. ताड़ी वाला 31. हुक्का बनाने वाला 32. कुलीगीर आदि.

जब निजाम ने अदालत के सैनिक अधिकारियों को बेगार कराने से मना किया तो अंग्रेज अफसर ने लिखा कि जरूरत के मुताबिक बेगार कराने की छूट सरकार को दी जानी चाहिए.

बाद में गई 1887 में भारत सरकार के गृह सचिव ने इस रिवाज को भारत की पुरानी परंपरा बताया. 1891 में ब्रिटिश भारतीय फौज के सेनापति ने सरकार को लिखा कि फौज की इज्जत बढ़ाने के लिए सब से बड़ा कदम यह होगा कि फौजके किसी भी व्यक्ति को, "वह रुखसत में हो या पेंशनयापता हो जब वह अपने घर में हो उसे बेगार के लिए पकड़ा न जा सके, ऐसा हुक्म दिया जाये, इस मामले को बाद में बार बार सेना ने उठाया. पर ब्रिटिश भारत की सरकार इस के लिए राजी नहीं हुई कि कम से कम सैनिकों को घर पर रहते समय बेगार के लिए न पकड़ा जाये. 1910 में सेना ने फिर यह सवाल उठाया. मामला आगे बढ़ा. संयुक्त प्रदेश (उत्तरप्रदेश) की सरकार ने इस पर विस्तृत विचार कर इसे स्वीकार करने में अपनी असमर्थता व्यक्त की; 1820 से ही यानी जब से ब्रिटिशों ने कुमाऊं-गढ़वाल का शासन संभाला, उस के कुछ समय बाद से ही उस इलाके में अब तक यह रस्म चली आ रही थी कि हर जमींदार और काश्तकार अधिकृत अफसरों की मांग तथा रिवाज के मुताबिक कुली तथा बरदाइश (मांग की पूर्ति) प्रस्तुत करे. हर बंदोबस्त के साथ यह ब्रिटिश शर्त लगायी जाती रही. सिर्फ गढ़वाल के कुछ गांवों के तीर्थों के पुजारियों को यह छूट थी कि वे स्वयं कुली का काम न करें, उस के एवज में पर्याप्त रकम दे दें. क्योंकि ये पुजारी समाज में बहुत सम्मानित थे और कभी भी बोझा नहीं ढोते थे.

यूरोप में प्राचीनकाल से ले कर उन्नीसवीं शताब्दी तक बेगार प्रथा व दास प्रथा का अस्तित्व रहा. संभव है, भारत के भी किन्हीं हिस्सों में बेगार जैसी प्रथाएँ रही हों. कहा जाता है कि ताजमहल जैसी इमारतें बेगारी की मदद से बनी. पर इन विषयों में गहरी छानबीन की जरूरत है. सिर्फ छिटपुट किताबी उद्धरण पूर्णतः अपर्याप्त हैं. ब्रिटिश दस्तावेजों से तो सिर्फ यही स्पष्ट होता है कि जब अंग्रेजों ने भारत में बेगारी प्रथा चलाई तो यहां के लोगों में एक आतंक फैल गया और इन लोगों के लिए यह दमन का एक नया और अत्यंत विकराल रूप था कोई सुपरिचित रिवाज नहीं.

यह भी बार बार विचारणीय है कि ब्रिटिशों ने ही न केवल भारत के गरीबों से वरन राजाओं, नवाबों वगैरह से भी असीमित अत्यधिक ब्याज दरें वसूलनी शुरू कीं. इस के लिए डराया धमकाया. इन्हीं हथकंडों से वे धीरे धीरे छा गये. भारतीय शिष्टवर्ग में यदि अपने करार के प्रति सम्मान की प्रवृत्ति नहीं रही होती और वे इन अनुबंधित ब्याज दरों को चुकाने को स्वधर्म न मानते तो स्थिति भिन्न होती. वहरहाल, अंग्रेजों ने ये ही हथकंडे बुनकरों-कारीगरों और किसानों के साथ भी अपनाये. अंग्रेजों ने भारतीयों की नैतिक भावना का जम कर दोहन किया तथा चंद रुपयों को बुनकरों में बांट बांट कर उन पर नैतिक दबाव डाल कर अपने लिए कपड़े बुनवाए तथा उन्हें गरीब-कंगाल बनाते रहे.

इन्हीं तमाम कारणों से भारतीय कंगाल होते गये. उन में सांस्कृतिक दरिद्रता भी बढ़ती गयी. समाज का संतुलन लड़खड़ा गया. पीढ़ियों तक यही सिलसिला चला. पुराने सामाजिक रिश्ते छिन्न भिन्न किये जाते रहे. अंग्रेज शासन ने भ्रांत धारणाएँ प्रचारित कीं. सामाजिक कलह को भड़काते बढ़ाते हुए उन्होंने सारे आधार नष्ट कर डाले. और यह झूठ भी जम कर फैलाया कि भारत में हजारों वर्षों से ऐसा ही सामाजिक टकराव है. आज के भारत में ये ही अवधारणाएं, क्रूरताएँ और कटुताएँ घर कर चुकी हैं, जो कि वस्तुतः अंग्रेजोंद्वारा 18वीं, 19वीं शताब्दी में इस देश में छल बल से थोपी गयी.

अंत में, यह कहना आवश्यक है कि जरूरतमंदों को तात्कालिक मदद अपेक्षित है. पर सिर्फ तदर्थ उपाय अपर्याप्त सिद्ध होते हैं. बंधुआ प्रथा जैसी चर्चित समस्याओं को सिर्फ दया, दान और विकास के जरिए हल कर लेने की कामना बहुत फलवती न हो सकेगी. जब तक कि इन स्थितियों के मूल कारणों तथा इन्हें पनपाने वाले विचारों, अवधारणाओं और भाव प्रत्ययों को पहचान कर समाप्त नहीं किया जाता तब तक सचमुच कुछ भी हासिल न हो सकेगा. न सिर्फ गांवों के ताकतवर लोग ही वहां के गरीबों के साथ क्रूर, अकल्पनीय शोषक व्यवहार करते हैं. वरन् शहरों में हालत और खराब है. शहरों के जागरूक, शक्ति संपन्न सुसंस्कृत लोगों का अपने आसपास के कमजोर तबकों से व्यवहार और अधिक क्रूरतापूर्ण तथा अमानवीय है. उस में सच्चे संपर्क की कमी तथा अज्ञानतापूर्ण विदेशी अवधारणाओं का बहुत्य भी योगदान देता है. भारत के समक्ष उपस्थित चुनौतियां गहरी और बड़ी हैं. जिन लोगों का भारत के साधन स्रोतों के बड़े भाग पर स्वामित्व है, वे शिक्षित प्रबुद्ध प्रबल लोग विदेशी अवधारणाओं और विकास के पराये पैमानों से अभिभूत एवं पराभूत हैं. वे हर क्षेत्र में विदेशी प्रतिमानों के प्रति अनुरक्त और मोहविष्ट हैं. (यहां तक कि शौच के उपकरणों के मामले में भी) दूसरी ओर हैं भारत के अपेक्षाकृत साधनहीन किंतु मेहनती लोग, जिन के लिए आधुनिक भारत न केवल भयावह है अपितु एक अबूझ पहेली भी है. ग्रामीण कुलीन वर्ग अपने अधिक ताकतवर शहरी भाइयों द्वारा बनाये गये रास्ते का कुछ ज्यादा क्रूरता के साथ अनुसरण कर रहे हैं. इन मूलभूत चुनौतियों का सामना करने के बाद ही 26 लाख अनुमानित बंधुआ मजदूरों की समस्याओं के साथ, ऐसी ही अन्य तमाम समस्याओं का उचित एवं व्यावहारिक समाधान खोजना संभव हो सकेगा.

पुरस्कार

कला का सम्मान: एक बुनियादी जिम्मेदारी

अभी तक संस्कृति के क्षेत्र में देश का सब से बड़ा पुरस्कार साहित्य के लिए दिये जाने वाला ज्ञानपीठ पुरस्कार रहा है. इस स्थिति में एक बुनियादी और प्रीतिकर परिवर्तन पिछले सप्ताह हुआ जब सृजनात्मक कलाओं के लिए मध्यप्रदेश शासन द्वारा स्थापित अखिल भारतीय पुरस्कार कालिदास सम्मान से प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी ने एक भव्य समारोह में विख्यात गायक पंडित मल्लिकार्जुन मंसूर (ज. 1910) और पंडित सेम्मनगुडी श्रीनिवासय्यर (ज. 1908) को विभूषित किया. पुरस्कार की राशि एक लाख रुपये है. वर्ष 80—81 के लिए यह शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में दिया गया है. और वर्ष 81—82 में रूपंकर कलाओं के लिए दिये जाने की घोषणा की गयी है. इस बार सम्मान के लिए चूंकि दो संगीतकार चुने गये, मध्यप्रदेश शासन ने पुरस्कार की राशि विभाजित करने के बजाय दोनों कलाकारों को एक एक लाख रुपये भेंट किये.

रवींद्र भवन भोपाल में 20 जुलाई, 1981 को शाम 7 बजे सुरुचि और भव्यता से सजाये मंच पर प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी और मध्यप्रदेश के मुख्य मंत्री अर्जुन सिंह के साथ अखिल भारतीय 'कालिदास सम्मान' पाने वाले दोनों कलाकारों और इक्कीस हजार रुपये का राज्य स्तरीय शिखर सम्मान पाने वाले चित्रकार देवकृष्ण जटाशंकर जोशी, कथक नर्तक कार्तिकराम और साहित्यकार श्रीकांत वर्मा एक साथ बैठे. उन के पीछे बेसनगर विदिशा में प्राप्त हुई ईसापूर्व दूसरी शताब्दी के कल्पवृक्ष की एक प्रतिमा का एक विशाल फोटोग्राफ था. यह कल्पवृक्ष 'कालिदास सम्मान' के प्रतीक चिन्ह के रूप में चुना गया है.

इस अवसर पर मुख्यमंत्री अर्जुन सिंह ने कहा 'सम्मान के लिए जो चयन प्रक्रिया बनायी

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

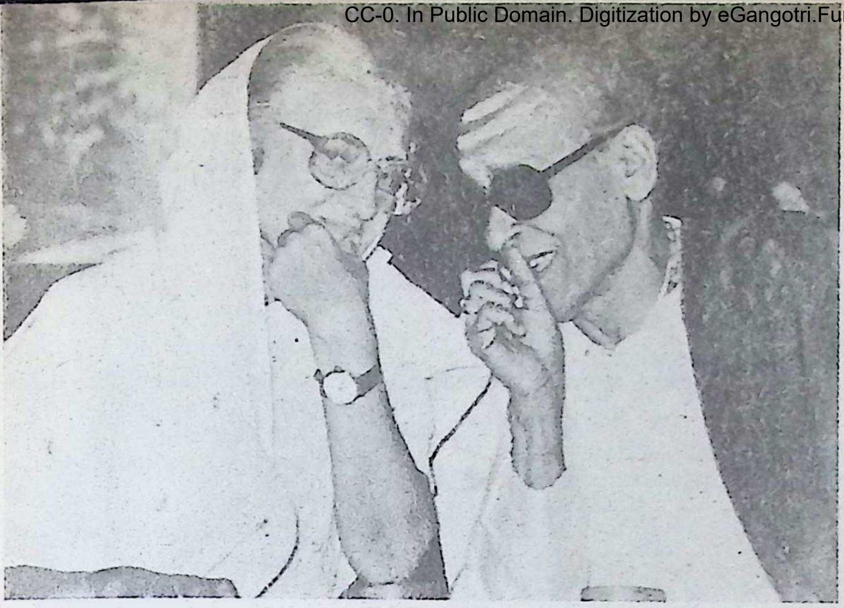

श्रीमती इंदिरा गांधी और मल्लिकार्जुन मंसूर

सेम्मनगुड़ी श्रीनिवासय्यर

गयी है उस में स्वयं कलाकारों, विशेषज्ञों और रसिकों की सक्रिय हिस्सेदारी है. 'कालिदास सम्मान' के लिए पूरे देश के और 'शिखर सम्मान' के लिए पूरे प्रदेश के लगभग 1000 कलाकारों, विशेषज्ञों, रसिक संस्थाओं के सुझाव आमंत्रित किये गये थे. अलग अलग चयन समितियों ने इन सुझावों की समीक्षा की. मध्यप्रदेश ने यह नीति निर्णय लिया है कि चयन समितियों द्वारा किया गया चयन राज्य शासन पर बंधनकारी होगा. 'कालिदास सम्मान' के लिए चयन समिति के ठाकुर जयदेव सिंह, डा. नारायण मेनन, पु.ल. देशपांडे, कुंवर नारायण और राहुल बारपुते सदस्य थे. चित्रकार मकबूलफिदा हुसेन और फिल्मकार श्री मणि कौल समिति की बैठक में शामिल नहीं हो सके. 'शिखर सम्मान' की चयन समिति में कुमार गंधर्व और मदुराई रामकृष्ण गौतम, श्री जगदीश स्वामीनाथन, निर्मल वर्मा, और रमेश चंद्र शाह, तथा नृत्यवेत्ता डा. सुनील कोठारी आदि शामिल थे.'

मुख्यमंत्री ने कहा 'हम मानते हैं कि संस्कृति का सम्मान और समर्थन एक कल्याणकारी प्रजातांत्रिक राज्य की बुनियादी जिम्मेदारी है लेकिन राज्य को आश्रय देने का अहंकार नहीं पालना चाहिए. उस का काम साहित्य और कलाओं की बुनियादी स्वतंत्रता और विविधता का सम्मान और समर्थन करना है. हम अपनी शक्ति भर मध्यप्रदेश में यही कर रहे हैं. हमारी कोशिश अपने समय के लेखकों कलाकारों को यह अहसास कराने की है कि समाज में उन का महत्वपूर्ण स्थान है. हम नागरिकों से यह निवेदन करना चाहते हैं कि कलाओं के बिना हमारी मानवीयता और नागरिकता अधूरी ही रहेगी.'

प्रशस्तिः संस्कृति विभाग के विशेष सचिव अशोक वाजपेयी ने कलाकारों की प्रशस्ति पढ़ी. पंडित सेम्मनगुड़ी श्रीनिवासय्यर की प्रशस्ति में कहा गया है 'उन में कर्नाटक संगीत की परंपरा का सब से प्रामाणिक रूप विद्यमान है. ताजगी भरी सहजता, एकाग्र तल्लीनता और संपूर्ण समर्पण के साथ उन में रागों के सार और आत्मा के प्रति गहरी संवेदनशीलता प्राप्त होती है. उन के गायन में स्वाभाविकता के साथ एक अविस्मरणीय और अभिभूत करने वाली प्रशांति मिलती है. उन की पारंपरिक शास्त्रीयता में भी एक ऐसी स्वच्छंद स्फूर्ति है जो अत्यंत संवेदनशील और आभान्वित संगीत की रचना करती है. कला के प्रति एक सुखद और अचरजभरी उदारमनस्विता के कारण उन्होंने अपनी कला में नयी वैचारिक और भावात्मक ऊर्जा संयुक्त की है और समयसिद्ध रागों और संरचनाओं को शास्त्रीय अवधारणाओं के साथ समरस कर नयी दीप्ति दी है.'

पंडित मल्लिकार्जुन मंसूर के बारे में प्रशस्ति में कहा गया: 'पंडित मल्लिकार्जुन मंसूर की गायकी अपनी शैलीगत मौलिकता, रागों के विशिष्ट और निजी चुनाव, शुद्धता और सूक्ष्मता के साथ भावात्मक अभिव्यक्ति की अद्भुत सामर्थ्य के लिए प्रख्यात है. जटिल किंतु मार्मिक लयकारी पर उन का असाधारण अधिकार है. उन के यहाँ कठोर अनुशासन और घनघोर स्वच्छंदता है. अनगिनत उभरी उकेरी सतहों पर शिल्पित उन की राग रचनाएँ जैसे ताल स्पंदित आधारों पर वाणी का स्थापत्य है. महाकाव्यात्मक रूपाकार घनीभूत समय में अंतरिक्ष को आक्रांत करता है. उन का संगीत भारतीय परंपरा की सृजनात्मक निरंतरता का अकाट्य प्रमाण है. अपने संगीत से वह जैसे इतिहास के बिखराव का अतिक्रमण कर ऐसी अन्विति और समग्रता अर्जित करते हैं जो प्राचीन और आधुनिक के अंतर को मिटा देती है. उन के संगीत की प्रशस्त केंद्रीय संरचना में भावनात्मक रंगों के कोमल माधुर्य के साथ अद्भुत जिजीविषा, शक्ति और अचूक कौशलता की निरंतरता है. अविरल, अटूट और लगभग अनंत उन का

देवकृष्ण जटाशंकर जोशी

कार्तिकराम

श्रीकांत वर्मा

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

संगीत अजस्र और असमाप्य प्राचीन उद्गम से अपना अंतःसंबंध बनाये हुए है.'

इंदौर के 71 वर्षीय चित्रकार **देवकृष्ण जटाशंकर जोशी** की प्रशस्ति में कहा गया कि 'श्री जोशी की कला मनुष्य और प्रकृति के बीच एक सघन रिश्ता खोजती है. आधुनिक दृष्टि की संपन्नता के साथ ही लोकजीवन की स्थानिक आंचलिकता से रची बसी उन की कला आसपास के जीवन में सक्रिय भागीदारी का एहसास कराती है. भूदृश्यों के प्रभाववादी ऐंद्रिक संस्कार उन में शैलीगत सघनता और चटख रंग संघातों से प्रतिकृत होते हैं. उन की कला में जीवित यथार्थ और मानवीय संस्पर्श का उल्लेखनीय समन्वय है.'

रायगढ़ की विलुप्तप्राय कथक परंपरा की सब से प्रामाणिक प्रतिमूर्ति **कार्तिकराम** की प्रशस्ति में कहा गया कि 'लोक से शास्त्र की ओर आने के कारण उन की नैसर्गिक प्रतिभा ने कथक को लोक नृत्य की विपुल गतिशीलता, आवेग और जीवित संस्कार प्रदान किये. जयपुर और लखनऊ घराने की शास्त्रीय शैलियों के उन्मुक्त साक्षात्कार और अपनी स्वच्छंद कल्पनाशीलता से कार्तिकराम ने एक संश्लिष्ट सर्जनात्मकता अर्जित की है. कथक के राष्ट्रीय मानचित्र पर मध्यप्रदेशको स्थान और प्रतिष्ठा दिलाने में कार्तिकराम का योगदान केंद्रीय है. कथकों की परंपरा से आये बिना उन्होंने इस शास्त्रीय शैली में जो ऊँचाई अर्जित की वह अप्रतिम है. अपने उदाहरण से उन्होंने शास्त्रीयता में स्वतंत्रता की एक नयी राह खोजी है.'

कवि, कथाकार और आलोचक **श्रीकांत वर्मा** को समकालीन हिंदी कविता का प्रखर और तेजस्वी कवि बताते हुए प्रशस्ति में कहा गया कि 'उन की कविताएँ इस शताब्दी की अमानवीयता और भयावहता, विडंबना और विसंगति से सघन मुठभेड़ का साक्ष्य हैं.'

प्रधानमंत्री **श्रीमती इंदिरा गांधी** ने अपने संबोधन में कला संगीत और काव्य के क्षेत्र में मध्यप्रदेश की प्राचीन समृद्ध परंपरा का उल्लेख करते हुए दोनों संगीतकारों और शास्त्रीय संगीत के क्षेत्र में उन के योगदान को एक आदर्श माना और यह कहा कि 'कालिदास सम्मान से विभूषित दोनों ही कलाकारों का यद्यपि वे हिंदुस्तानी और कर्नाटक शैलियों के कलाकार हैं, दक्षिण भारत से होना हमारी कला और संस्कृति की एकता का प्रतीक है.' उन्होंने मध्यप्रदेश द्वारा एक राष्ट्रीय पुरस्कार स्थापित करने की सराहना की. इस अवसर पर 21 और 22 जुलाई को मंसूर जी और सम्मनगुड़ी की संगीत सभाएँ भी हुई. आयु के बावजूद दोनों के गायन में प्रखर दीप्ति, शक्ति और अद्वितीय दृष्टि थी. सूचना प्रकाशन संचालनालय ने दोनों कलाकारों पर केंद्रित एक बड़ी फोटो प्रदर्शनी भी आयोजित की. कलाओं के सम्मान के लिए अखिल भारतीय और राज्यीय स्तर पर मध्यप्रदेश ने जो बुनियादी जिम्मेदारी अनुभव की है आशा है अन्य राज्य भी उस से प्रेरणा लेंगे और संस्कृति की धारा को और अधिक वेगवान और विशद बनायेंगे.

कला

आधी दूरी से वापस

कर्नाटक के दो चित्रकारों—**विजय सिंघुर** और **वीरण्णा अंदानी**—के चित्रों की संयुक्त प्रदर्शनी पिछले दिनों श्रीधराणी गैलरी (नयी दिल्ली) में आयोजित हुई. दिल्ली में यह उन की पहली ही प्रदर्शनी थी. बंबई, हैदराबाद, बंगलूर आदि में वे एकाधिक प्रदर्शनियाँ कर चुके हैं. उन्होंने कई समूह प्रदर्शनियों में भी हिस्सा लिया है. **विजय सिंघुर** मिलते ही उन कठिनाइयों का जिक्र करते हैं जो छोटी जगहों से बड़े केंद्रों में काम ले जाने की हैं: 'मैं तो बंगलूर में भी नहीं रहता. **बीजापुर** जानते हैं न, वहाँ से भी 40 मील दूर रहता हूँ. चित्र लाने ले जाने में बड़ी मुश्किल होती है.' इस बात पर अफसोस प्रकट करने पर कि तिस पर भी दिल्ली में पर्याप्त संख्या में दर्शक नहीं मिलते, वह कहते हैं: 'फिर भी काम दिखाने की इच्छा तो होती ही है.'

विजय सिंधुर (ज. 1940) अक्सर एक चित्र-माला में काम करते हैं. इस बार उनकी चित्र माला है: **स्नान करती स्त्री.** इस से पहले की चित्रमालाएँ तितली, बकरी और चट्टानों को लेकर थीं: 'दृश्य अनुभवों से जुड़कर ही मैं ये चित्र मालाएँ बनाता हूँ.' उन के चित्रों के रंग ऐंद्रिक, संवेगमय और पारदर्शी-अपारदर्शी के बीच के हैं. वह प्रायः किसी एक **वर्ण** (मसलन, लाल, हरे, पीले) को केंद्र बनाकर उसी के बीच कुछ अन्य रंगों (और रंगतों) का समायोजन करते हैं. एक ऐंद्रिक-स्पंदन से बँधे हुए उनके रंग कुछ तप्त और 'प्रकाश'-प्रेरित हैं. किन्हीं **स्थानिक** रंग स्मृतियों की छाप भी उन पर है जो उन के रंगों को विश्वसनीय बनाती है. वे निरा अलंकारिक नहीं हैं. लेकिन इन्हीं के बीच स्त्री आकृति की गाढ़ी और पुष्ट आकार रेखाएँ कुछ 'आरोपित' ही लगती हैं. हम यह नहीं सुझा रहे कि वे अपने को कुछ और विलीन करतीं तो अच्छा होता (उस तरह के अनुमान तो कई हो सकते हैं) हम यही कहना चाह रहे हैं कि मनोवेगी और परिवेशी रंगों के साथ वह एक अंतर्संबंध में अभी नहीं लगतीं और चित्रभाषा को सघन करने के बजाय उसमें फाँक ही पैदा करती हैं.

दरअसल इन्हीं चित्रों के संदर्भ में ही नहीं, सामान्यतः समकालीन परिदृश्य में यह बात दीख पड़ती है कि एक ओर जहाँ यह अच्छी घटना है कि स्थानिक-देशज रंगों को एक ऐंद्रिकता में बरता जा रहा है. वहीं कुल चित्र रूप (रूपों) की अवधारणात्मक समझ बहुत कच्ची लगती है. **वीरण्णा अंदानी** (ज. 1947) **गुलबर्गा** के एक कलामहाविद्यालय के प्रमुख हैं. उन के चित्र जलरंगों में प्रायः काले-सफेद में हैं. चित्र रूप एक उदग्रता में हैं और इन में जैसे स्मृति और इतिहास में से कुछ चीजों को चुनकर रखा गया है. खंडहर, स्तंभ, शिलालेखों के-से कुछ रूप, वस्तुएँ यहाँ एक समायोजन में हैं. रंग-प्रयोग के लिए वह खर कपड़े, आदि का भी इस्तेमाल करते हैं—अंतिम स्पर्श कूँची के हैं. चुनी हुई वस्तुएँ, अभिप्राय चिन्ह, अक्सर समायोजन के रूप में तो अपना एक निर्वाह कर ले जाते हैं (यह 'निर्वाह' ही फिलहाल उन का प्रमुख उद्देश्य बन जाता है!) लेकिन वे स्मृति, इतिहास का कोई मर्म भी एकत्र करते हुए नहीं लगते. इन में भी किन्हीं स्थानिक चीजों—विशेष रूप से कुछ प्राचीन वास्तुशिल्पी-मूर्तिशिल्पीय रूपों—की एक छाप है. लेकिन यह छाप सतह को अक्सर भेदती नहीं.

फिर भी इन दोनों चित्रकारों के संदर्भ में यह बात फिर याद करने वाली लगती है कि वे परिवेश -विमुख नहीं हैं और अपने चित्र रूपों के उत्स ठीक ही देखी जानी वस्तुओं में ढूँढ़ रहे हैं. खतरा इन उत्सों या स्रोतों के सरलीकरण का ही है. रचनात्मक बेचैनी की जगह सरल समाधान कभी तृप्त नहीं करते.

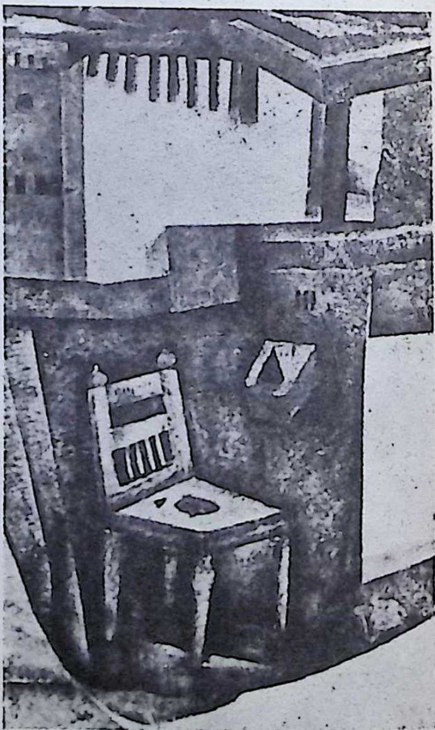

वीरण्णा अंदानी का एक चित्र

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

यह अस्सै है, बहुत अस्सै

ध्रुवस्वामिनी एक तरह से देखें तो प्रसाद के सब नाटकों में सरल है और एक तरह से देखें तो सब में कठिन. सरल इसलिए कि उस की बनावट में चरित्रचित्रण और गतिशील द्वंद्व का यथेष्ट विचार है जिस से कोई भी निर्देशक उस का खेलना सहज मान सकता है और कठिन इसलिए कि पारसी, संस्कृत और विदेशी शैलियों की तिकोनी खींचतान से मुक्त कर के ही उसे मंच पर सफल किया जा सकता है और ऐसी काटछांट हिंदी साहित्य और रंगमंच की ऐतिहासिक समझ के बिना अवकचरी ही रह जायेगी. रुचिका के अरुण कुकरेजा जिन्होंने अंग्रेज़ी में छपी एक समीक्षा की लेखिका के अनुसार राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के द्वितीय वर्ष के छात्रों की ध्रुवस्वामिनी देख कर उस से बढ़िया ध्रुवस्वामिनी करने का दंभ किया था, आसान और कठिन की इसी चपेट में आ गये हैं.

अफसोस यह है कि उन्होंने अपने लिए सहानुभूति की भी गुंजाइश नहीं छोड़ी है क्यों कि उच्चारण से ले कर अर्थ तक भाषा की एक सीनाजोर नाजानकारी, जो उन के अभिनेता दिखाते हैं और भावनाओं की एक सस्ती फिल्मी समझ जो निर्देशक दिखाता है एक दूसरे में चपक कर बैठ गयी है. इस में प्रशंसा के एक शब्द के लिए भी झिर्री नहीं रही.

यह दर्शक एक डेढ़ मिनट देर से पहुँचा था. बाद में बताया गया कि ध्रुवस्वामिनी का प्रथम वाक्य जो मूल में काफ़ी टेढ़ामेढ़ा है जैसा राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय के छात्रों ने संपादित कर के बोला था वैसा ही चुरा लिया गया था. किंतु "इन लताओं को इस के चरणों में लोटना ही चाहिए न" कहने के पहले रुचिका की ध्रुवस्वामिनी जमीन पर लोट रही थी. इस दर्शक ने ध्रुवस्वामिनी का जो प्रथम वाक्य सुना वह था "यह अस्सै है" और नाटक की किस्मत का वहीं फैसला हो गया. वह अस्सै ही था : अस्सै यानी रुचिका की भाषा में असह्य. इस के बाद दुर्भीसंघी और उशरंग पर्यटक आदि आदि कितने ही उच्चारण उतने धड़ल्ले से बोले गये जितनी धौंस से रईसों के लड़के नौकरी के लिए साक्षात्कार देने आते हैं. थोड़ी देर बाद एक समीक्षक की हैसियत से जी कड़ा कर के उच्चारणों को भुला कर ध्यान लगाना पड़ा कि अभिनय, संयोजन और चरित्र चित्रण में नाट्य विद्यालय की ध्रुवस्वामिनी को चुनौती देने वाला यह दल कर क्या रहा है. कठिनाई यह है कि एक अलिखित नियम के अनुसार विद्यालय के शिक्षणगत प्रदर्शनों की समीक्षाएं अखबारों में लिखी नहीं जातीं, इसलिए बहुत से पाठकों को कभी मालूम न हो पायेगा कि देवेंद्रराज अंकुर के निर्देशन में ध्रुवस्वामिनी ने मंच की सादगी और सूनेपन के बावजूद चरित्रचित्रण, वाचन और अभिनय में क्या प्रतिमान स्थापित किया था. पर तुलना की सुविधा न होने पर भी दर्शक रुचिका के प्रदर्शन में रोशनी, चमक और आडंबर की बहुतायत तो देख ही सका होगा. साहित्य से तिरस्कार भरे परिचय की कमी बहुत से अंशों में दृश्यों की चित्रात्मकता बढ़ा कर पूरी भी कर ली गयी होगी क्यों कि आखिरकार नाटक में दृश्य की मोहिनी होती है. परंतु (यहाँ एक ही स्थल याद आ रहा है यद्यपि थे एक से अधिक) जब शकराज मारा गया और लगभग एक ही साथ उस के सारे सैनिक भी टें बोल गये (शब्दशः कहें तो टें नहीं बल्कि बड़ा कर्कश चीत्कार था और सब की गटई से एक साथ निकला) तो दर्शकों की बोरियत एकबारगी टूट गयी और सब हँस पड़े. यह प्रमुदित वातावरण बना रहा, क्यों कि शकराज का शव जो एकाएक सिकुड़ कर आधा रह गया था, एक अत्यंत रंगीन अर्थी पर एक एक हाथ से उठाये हुए दो आदमी ले जाते दिखायी दिये.

धन्यवाद देने के योग्य सिर्फ ऐसे अवसर ही इस नाटक की जान नहीं थे. जिस तरह के दर्शकों की कल्पना निर्देशक के मन में रही होगी उन के मनोरंजन के लिए स्त्रियों का और पुरुषों का वह रूप भी दिखाया गया जो मानव संबंध के थोक व्यापारियों ने बाजार में चला रखा है. सब स्त्रियाँ भोग्या हैं और ताड़न की अधिकारी, दमित करके रखी जाने योग्य तथा उसी में खुश रहने वाली चीज़ें, सब पुरुष तलवार खींच कर उस की धार पर हाथ फेर कर गरजते हैं और नाटक में अपने चरित्र के अभाव को उस क्रूरता के मुखौटे से ढँक लेते हैं जो समाज में शोषकों के दलालों ने सामान्य रूप से फैला रखी है. इस तरह पुरुष का तादात्म्य शासक पुरुष से हो जाता है और स्त्री का दासी वर्ग से. प्रसाद बेचारे ध्रुवस्वामिनी को एक जुझारू कूटनीतिज्ञ धैर्यवती नायिका बना कर ऐसे निर्देशकों का क्या बिगाड़ लेंगे खास तौर से तब जब सारे पुरुष पात्र विनोद खन्ना, राजकुमार या अमजद खान की तरह इतरा और बोल रहे हों?

निर्देशक ने स्त्री के अधिकारों का प्रश्न इस नाटक में होने का उल्लेख अपनी प्रकाशित टिप्पणी में किया है. उनके निर्देशन के अनुसार ध्रुवस्वामिनी को राम गुप्त से मोक्ष धर्मगुरु द्वारा यों ही मिल सकता है: बेचारी को उस के लिए संघर्ष नहीं करना पड़ता जब कि प्रसाद की ध्रुवस्वामिनी (और यह बात अंकुर के निर्देशन में पहचानी गयी है) पहले दृश्य से ही षड्यंत्र के बीच अपनी एक रणनीति बनाती हुई दिखायी देती है. रुचिका में ध्रुवस्वामिनी की कोई नीति नहीं है. जैसा प्रसाद ने लिख दिया है वैसा वह मशीन की तरह करती जाती है. और हर कदम पर निर्देशक उसे एक औरत से भी ज्यादा औरत बनाने की व्यावसायिक कोशिश में आत्ममुग्ध होता जाता है.

जब यह अनिवार्य ही हो जाता है कि अब वह कोई भावना अपनी बोली से प्रकट करे तो वह भावना क्रोध या रुदन के एक विस्फोट के रूप में भड़ाक से निकल पड़ती है. बाकी सारा समय चेहरे पर पेट के दर्द की सी पीड़ा लिये हुए वह शब्दों को चबा चबा कर बताती है कि अभिनय हो रहा है. धर्मगुरू जिस तरह राज्य की आवश्यकताएं पहचान कर नीति ग्रंथों का राज्य के अनुकूल भाष्य करने पर तैयार हो जाते हैं वह राज्य और धर्म के संबंधों पर एक व्यंग्य है, यह बात निर्देशक की समझ से यथेष्ट परे रही होगी. तभी तो ध्रुवस्वामिनी लगभग बिनती कर के उन से अपना निर्णय सुनाने को कहती है जब कि उस समय वह विजेता है और धर्म गुरू वास्तव में अमात्य की ही तरह विजेता को प्रसन्न करने में लग चुके हैं. ध्रुवस्वामिनी को बिनती करने की जरूरत नहीं है.

ऐसे अपकृत स्थल अनेक हैं. वास्तव में इस नाटक की समीक्षा विस्तार से लिखना हिंदी साहित्य के प्रति एक विशेष प्रकार के नाट्य कर्मियों की संपूर्ण मनोभावना पर एक लेख लिखने के बराबर हो जायेगा. जैसे प्रचार और संप्रेषण के कलात्मक या व्यावहारिक दोनों माध्यमों में एक ताकतवर परंतु अधकचरे वर्ग द्वारा (जिन के हाथ में ये साधन होते हैं) भारतीय तत्व को सिर्फ सजावट के लिए इस्तेमाल किया जाता है वैसे ही प्रसाद को रुचिका ने किया है. बस गनीमत यह है कि जहाँ लोकगीत, लोकचित्र, नागरी के अक्षर, पहनावा और बोलियाँ ऐसे सजावट के सामान बनाने के अपढ़ आक्रमणों के नीचे कुचल जाते हैं वहाँ प्रसाद नहीं कुचल पायेंगे. वह अस्सै बना दिये जायें यह दुर्भीसंघी नहीं चल पायेगी क्यों कि— खैर छोड़िए इस के बहुत से कारण हैं. एक बहुत छोटा सा कारण नाट्य विद्यालय का ध्रुवस्वामिनी का प्रदर्शन भी है.—र. स.

'हीन ने सींग मारयो'
अगले अंक में
के० चं० व०

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

धनी जीवन का नर्क

वैसे तो पुरानी फिल्मों का अपना एक विशेष आकर्षण होता ही है पर यह बात भी है कि पिछले दो दशकों में दुनिया भर का सिनेमा इतना भ्रष्ट हो गया है कि अब 40 और 50 के दशक की फिल्में अपने सीधे सरल मानवीय दृष्टिकोण के कारण आकर्षित करती हैं. फ्रांसीसी सिनेमा में 40 और 50 के दशक में ऐसी दर्जनों काली सफेद फिल्में बनी थीं जो आज भी प्रासंगिक और महत्वपूर्ण नजर आती हैं. **जाक्स बेके** (1906–1960) का नाम अंतरराष्ट्रीय ख्याति तो नहीं प्राप्त कर सका पर उन की कुछ फिल्में रेनुआ, रेने क्लेर आदि प्रसिद्ध फ्रांसीसी फिल्मकारों की फिल्मों के बराबर स्थान रखती हैं. बेके ने सिनेमा की दुनिया में प्रवेश भी रेनुआ के प्रभाव से किया था. 1932 से 1939 तक वह रेनुआ के सहयोगी के रूप में काम करते रहे. लेकिन उन का खुद का फिल्म जीवन 1942 से शुरू हुआ. लगभग दो दशकों के समय में बेके ने अपनी दर्जन भर फिल्मों से फ्रांसीसी सिनेमा को एक स्वस्थ दिशा दी.

बेके की फिल्म कला की अधिकांश खूबसूरतियां हमें उन की 1951 की फिल्म 'एदुआर्द और कारोलीन' में मिल जाती हैं. इस फिल्म का एक स्तर तो हल्की फुल्की कॉमिडी के रूप में आगे बढ़ता है और दूसरे स्तर पर इस में धनी जीवन के नर्क की बहुत तीखी जांच की गयी है. यह फिल्म एक तरफ अपनी सादगी के कारण हमें प्रभावित करती है और दूसरी तरफ यह भी सिद्ध करती है कि एक बहुत साधारण सी दिखने वाली कहानी को कल्पनाशील पटकथा की मदद से कितने असरदार मोड़ दिये जा सकते हैं. साधारण महत्व के पात्रों की उपस्थिति को भी कितने प्रभावशाली रूप से दिखाया जा सकता है!

इस फिल्म का नायक एक उत्साही पियानोवादक है. उस की सुंदर पत्नी उस के कलाकार जीवन के संघर्ष को पहचान नहीं पा रही है पर फिर भी उसके मन में अपने पति के प्रति एक खास तरह का प्रेम है. इस फिल्म में दो ही सेटों का इस्तेमाल किया गया है. एक सेट में पियानो वादक का घर है जिस में पति-पत्नी के प्रेम और लड़ाई के मिले जुले अनेक प्रसंग फिल्माये गये हैं. दूसरे सेट में पियानोवादक एदुआर्द की पत्नी कारोलीन के धनी चाचा का घर है. लेकिन इन दोनों सेटों की मदद से जिंदगी की अनेक भावनाओं और बारीकियों पर नजर डाली गयी है. दिलचस्प बात यह है कि इस फिल्म में नाटक की बनावट होते हुए भी फिल्म विधा की अपनी खासियतों को सफलतापूर्वक उभारा गया है. कैमरे की गतियों में एक खास तरह की लय और आकर्षण है जो फिल्म में नाटक की बनावट के प्रभाव को कम करता है. फिल्म में बाहर के दृश्य बिल्कुल नहीं हैं लेकिन फिल्मकार ने अंतिम दृश्य में देर रात में सड़क पर भाग दौड़ कर रहे थोड़े से लोगों की एक संक्षिप्त झलक दिखाकर अद्भुत सिनेमाई प्रभाव छोड़ा है.

इस फिल्म के पति-पत्नी की समस्याएं बहुत परिचित किस्म की हैं. पति कला की दुनिया में सफल होने के स्वप्न देख रहा है और उस की पत्नी उस के मोटे शब्दकोषों पर खड़ी हो कर अपनी पोशाक को पेरिस के नये फैशन के मुताबिक बनाने के लिए बेचैन है. लेकिन फिल्मकार ने बड़े प्रेम से इन दोनों व्यक्तियों से हमारा परिचय कराया है. पत्नी पति को फूलों का गुलदस्ता खरीदने के लिए भेजने में सफल होती है तो फ्लैट के बाहर अचानक आवेश में आकर वह पति महोदय के प्रति बहुत गहरा प्रेम दर्शाती है. पर ठीक दूसरे क्षण में वह उसे लात मारकर सीढ़ियों पर लगभग धकेल भी देती है. इस तरह के कुछ प्रसंग फिल्म में एक मानवीय गरमाहट पैदा करते हैं. बेके अपने साधारण से दिखने वाले पात्रों को भी बहुत दिलचस्प बना देते हैं. मसलन पियानोवादक की मकानमालकिन अचानक आकर प्रस्ताव रखती है कि उस के घर में 24 घंटे की छुट्टी पाकर एक सैनिक मेहमान आया हुआ है. वह चाहती है कि एदुआर्द अपने पियानो से उस मेहमान को प्रसन्न करे. मकानमालकिन और उस के मेहमान के चेहरे कुछ ऐसे हैं कि बहुत थोड़ा कहकर वे बहुत ज्यादा हमें बता देते हैं!

धनी चाचा के यहां पार्टी में शहर के बड़े-बड़े मेहमान एकत्रित हैं. इस पार्टी के प्रसंग में निर्देशक ने पैसे वालों की जिंदगी की निरर्थकता, सतहीपन और क्रूरता को बहुत निर्मम ढंग से हमें दिखाया है. पेरिस के धनी समाज की स्त्रियों की छवि निर्देशक ने बहुत बारीकी से पकड़ी है. पियानोवादक के उदात्त और भव्य संगीत का सब लोग बड़े उत्साह से स्वागत भी करते हैं और उस से निराश होने में उन्हें देर भी नहीं लगती है. स्वागत का भी कोई ठोस कारण नहीं था और नाराजगी की भी कोई जरूरत नहीं थी. अपनी भावनाओं में डूबा हुआ पियानोवादक जब एक संगीत रचना को अधूरा छोड़ कर उठ खड़ा होता है तो थोड़ी देर के लिए पार्टी के संगीत रसिया बेचैन दिखायी देते हैं. लेकिन इस स्थिति से बाहर निकलने में उन्हें देर नहीं लगती. एक मसखरा बूढ़ा उठ कर पियानो पर बैठ जाता है और बेरहमी से अपने संगीत के कार्यक्रम को पेश करना शुरू कर देता है. एक विकृत किस्म के शोर के साथ पार्टी के सभी लोग उसे घेर लेते हैं और उस भयावह शोर में चीजें गुम होने लगती हैं. बेके की सफलता इस तरह की कुछ चीजों में है.

नयी नियुक्ति

भारत में **फिल्म महोत्सव निदेशालय** पिछले छः सात वर्षों में ही सक्रिय हो सका है. इन वर्षों में निदेशालय के कामों से संतुष्ट तो बहुत थोड़े लोग हुए होंगे पर यह सही है कि पिछले कुछ वर्षों से हर वर्ष होने वाले फिल्म महोत्सवों का अपना एक आकर्षण रहा है. इन महोत्सवों में तमाम तरह के हंगामे भी होते रहे हैं और पिछले नयी दिल्ली फिल्म महोत्सव में तो विज्ञान भवन में कुछ दक्षिण भारतीय प्रतिनिधियों ने व्यवस्था से नाराज हो कर अभूतपूर्व हंगामा खड़ा कर दिया था. 1976 से फिल्म महोत्सव निदेशालय के निदेशक **रघुनाथ रैना** अपनी लगभग 'प्लेब्वॉय' छवि के कारण फिल्म प्रेमियों में पहचाने जाते रहे हैं. बंगलूर में देविका रानी ने उद्घाटन के अवसर पर लगे हाथ उन की 'सुंदरता' की भी चर्चा कर दी थी. नीली जींस में अक्सर दिखने वाले रघुनाथ रैना अब निदेशालय की जिम्मेवारी से मुक्त कर दिये गये हैं. नौकरी से अवकाश प्राप्त करने में रघुनाथ रैना का डेढ़ वर्ष का समय अभी बाकी है. अब फिल्म महोत्सव निदेशालय को जुलाई महीने से **राष्ट्रीय फिल्म विकास निगम** का एक अंग बना दिया गया है और निदेशक के पद पर **बी. कृष्णा स्वामी** की नियुक्ति की गयी है.

कृष्णास्वामी के बारे में इस बात को काफी प्रचारित किया जा रहा है कि वह पहले ऐसे व्यक्ति हैं जो व्यावसायिक फिल्मकार की हैसियत से फिल्म महोत्सव निदेशालय के निदेशक के पद को सँभाल रहे हैं. कृष्णास्वामी को ग्रियरसन तथा रोसेलीनी जैसे विश्वविख्यात फिल्मकारों के साथ काम करने का मौका मिला है. वह फिल्म प्रभाग में लगभग सात वर्ष तक नौकरी करने के अलावा यूनेस्को के लिए भी काम कर चुके हैं. भारतीय फिल्म महोत्सवों में जूरी के सचिव के रूप में काम करने के अनुभव के कारण वह महोत्सव निदेशालय से परिचित भी हैं. देखना यह है कि उन के कार्यकाल में (रिटायर होने में उन के पास भी ज्यादा वक्त नहीं है) निदेशालय क्या करेगा. कलकत्ता में जनवरी में होने वाला गैर प्रतियोगी फिल्म महोत्सव अब दूर नहीं है!

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

बालकृष्ण सम

ईश्वर बराल

आधुनिक नेपाली साहित्य के पथिकृत और सुधीसमाज के प्रथम श्रेण्य एवं अग्रगण्य बालकृष्ण सम 21 जुलाई को अपरान्ह एक भरापूरा परिवार छोड़ कर दिवंगत हो गये. उस समय वह 79 वर्ष के थे. पाँच वर्ष पूर्व उन्हें दिल का दौरा पड़ा था. संज्ञाशून्य ही वह वेलौर ले जाये गये जहां से कुछ महीने की चिकित्सा से भले चंगे हो कर स्वदेश लौटे. उस के अनंतर वह बाहर से स्वस्थ दीखने पर भी अंदर अंदर टूट चुके थे जिस की झाँकी उन के मलिन चेहरे और फीकी मुस्कान में मिल जाती थी. उन के शरीर का दाहिना भाग पक्षाघात ग्रस्त हो गया था. उन की स्मरण शक्ति भी क्षीण हो गयी थी. अपने विगत जीवन के एक एक दशक के वृत्तांतों को मेरो कविता को आराधना (मेरी कविता की आराधना) शीर्षक से वह आठ भागों में प्रकाशित करना चाहते थे. मन होने पर भी वह मस्तिष्क और शरीर से लाचार थे. अभी तक उन की आत्मकथा के केवल दो भाग प्रकाशित हुए हैं.

बालकृष्ण सम : 'आगोरि पानी'

मृत्यु से 15 दिन पूर्व उन्हें फिर दिल का दौरा पड़ा था. इस बार वह संज्ञाशून्य हो कर ही दिवंगत हो गये. उन के निधन और करीब दो महीने पूर्व एक और साहित्य महारथी भिक्षु के निधन (देखिए दिनमान, 31 मई '81) से नेपाली लेखक समाज टूअर-सा हो गया है.

काठमांडो के प्रसिद्ध शासक राणाकुल में 1902 में जन्मे बालकृष्ण सम, सुविधा, ऐश्वर्य तथा वैभव के बीच ही पले. वह कोई बड़ी शैक्षिक उपाधि नहीं ले पाये परंतु उन का स्वाध्याय बहुशाखीय और विस्तृत था. वह एक साथ चित्रकार, छायाकार, संगीतकर्मी, रंगमंच निर्देशक, अभिनेता, निबंधकार, कहानीकार, नाट्यकार और कवि थे. परंतु नेपाली समाज ने उन्हें मूलतः कवि के रूप में ही ग्रहण किया. वह वस्तुतः क्रांतदर्शी थे. उन का ज्ञान विश्वकोषीय था.

अनेक अर्थ में बालकृष्ण नेपाली पुनर्जागरण के अगुवा थे. 1914-18 के प्रथम विश्वयुद्ध के अनंतर नेपाली समाज में उभरते अभिनवीकरण की प्रक्रिया राणा प्रधानमंत्री महाराज चंद्रशमशेर जंगबहादुर का स्वेच्छाचारपूर्ण क्रूर प्रशासन (1901-18), महात्मा गांधी के नेतृत्व में उभरता भारत का स्वातंत्र्य आंदोलन, अपने देश के अग्रजों लेखनाथ पौड्याल, शंभुप्रसाद ढुंग्याल और धरणीधर कोइराला की राष्ट्रवादी काव्य-रचनाएँ, और 1936-40 की राणा प्रशासन को अपदस्थ करने की देशव्यापी राजनैतिक हलचल—ऐसे कतिपय घटकों से बालकृष्ण प्रभावित हुए थे. इन घटकों के प्रभाव से उन के मानस में परंपरा विद्रोह की चिंगारियाँ दहकने लगीं. यह उन की परंपरा विपरीत शैली युक्त रचनाओं में अनेकधा परिलक्षित हुआ है. 1929 में सर्वप्रथम प्रकाशित पुस्तक कृति मुटुको व्यथा (दिल का दर्द) इस का साक्ष्य है. यह त्रासदी सामाजिक नाटक नेपाली सामाजिक विषयवस्तु की प्रस्तुति से ही नहीं शैली से भी एक विद्रोह था. इस के द्वारा बालकृष्ण ने नेपाल में अभूतपूर्व त्रासदी ही नहीं सर्वप्रथम प्रस्तुति की बल्कि नाटक में चमत्कारपूर्ण शेक्सपीअरीय नाटकीय मुक्तछंद के प्रभाव को संस्कृति के अनुष्टुप छंद में सँजो कर और इब्सेनीय सरल गद्य को अपना कर नेपाली गद्य को अर्थ गौरवमय बना दिया. काठमांडों में तत्कालीन उच्चवर्गीय राणा और खानदानी भद्रलोक अपनी ऐयाशी के लिए एक खास किस्म का दरबारी 'नाचघर' (रंगमंच) रखते थे जहाँ संस्कृति तथा हिंदी के पारसी रंगमंच के नाटकों के भोंडे नेपाली अनुवाद अथवा रूपांतर मंचित होते थे. ये अनूदित तथा रूपांतरित नाटक नेपाली जनजीवन से तनिक भी संबद्ध नहीं होते थे. बालकृष्ण ने 'मुटुको व्यथा' से तत्कालीन दरबारी रंगमंच की नींव इस तरह हिला दी कि शनैः शनैः वह कमजोर होता गया. इस दिशा में उन के परवर्ती नाटकों मुकुंद इंदिरा (सामाजिक कामदी, 1937) और अंधवेग (सामाजिक त्रासदी, 1939) तथा पौराणिक कथा-वस्तु के ध्रुव (1929) और प्रह्लाद (1938) नेपाली नाटक साहित्य के उच्च कीर्तिमान हैं. पौराणिक कथावस्तु समन्वित होते हुए भी 'ध्रुव' और 'प्रह्लाद' सामाजिक संदर्भ के ही आरसी हुए. वस्तुतः बालकृष्ण का जो ऊर्जस्वल राष्ट्रवाद मुकुंद इंदिरा में अभिव्यक्त हुआ था वह अन्य अनेक परवर्ती नाटकों में स्थायी रहा. इन परवर्ती नाटकों में उन की पूर्वकालीन चमत्कारपूर्ण काव्यात्मक शैली का अत्यधिक ह्रास होने पर भी राष्ट्रवाद की उद्घोषणा गंभीरतर होती गयी—अमरसिंह थापा (1955) इस का साक्ष्य है.

बालकृष्ण के अधिकांश नाटक उनके अपने ही निर्देशन में समय समय पर मंचित हुए हैं. इन नाटकों के मुख्य चरित्र की भूमिका में वह स्वयं ही अवतरित होते थे.

बालकृष्ण में सौंदर्य और रंगमंच कला की संवेदना कूट कूट कर भरी हुई थी. साथ साथ अपनी कृतियों में वह दर्शन तत्त्वज्ञान और वेदांत भी गढ़ते थे. नियमित आकस्मिकता (अव्याख्येय रहस्य विज्ञान का प्रबंध ग्रंथ, 1946) और खंडकाव्य आगोरि पानी (आग और पानी, 1956) से उन के दार्शनिक पक्ष, महानाटक प्रेमपिंड (सामाजिक त्रासदी, 1953) और सामाजिक महाकाव्य चिसो चुल्हो (ठंडा चूल्हा, 1958) से उन के उदारवादी सामाजिक सैद्धांतिक पक्ष परिलक्षित हुए हैं. 1951 में राणाशाही के ढहने पर वह विश्वेश्वरप्रसाद कोइराला के समाजवादी व्यक्तित्व से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपनी कौलिक उपाधि 'शमशेर जंगबहादुर राणा' त्याग कर घटाटोपविहीन सरल 'सम' उपाधि ली थी. परंतु एक ओर आभिजात्य तथा शासकीय संस्कार से उन का व्यक्तित्व इस तरह निर्मित हो चुका था और दूसरी ओर अपनी विशिष्ट चमत्कारपूर्ण शैली से उन का अनन्य सदृश 'मुरारिपंथ' इतना दृढ़ बन चुका था कि वह सर्वसाधारण नेपाली जनता की पंक्ति में बैठे ही नहीं. विगतकाल में राणा शासक कुल के सदस्य होने के नाते वह राजनैतिक दृष्टि से मनसा वाचा और कर्मणा आजीवन सत्तापोषी ही रहे. वह वस्तुतः बहुरूपी थे. तत्कालीन राजनैतिक यथास्थितिवाद से समझौता करना उन के लिए बायें हाथ का खेल था. इस दृष्टि से उन की उक्ति 'आग को बुझ कर/पानी को तप्त हो कर/एक दिन उन्हें मेल मिलाप करना ही होगा/गिरने वाले

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

को उठकर/उठने वाले को झुककर/पारस्परिक चुंबन का आदान प्रदान करना ही होगा/' (आगो रे पानी) उन के पूर्वकालीन राजनैतिक विद्रोह का एक महज़ मुखौटा प्रतीत होता है. 1951 से उन के बैठक खाने को देखने वालों को नेपाल की राजनैतिक तस्वीर साफ दीख पड़ती थी. वहाँ तत्कालीन सत्तासीन व्यक्ति की तस्वीर ही केंद्रीय आकर्षण के रूप में रखी जाती थी.

बालकृष्ण अपनी प्रखर प्रतिभा के कारण आग के समान थे. जिस का ताप दर्शक को अनुभूत तो होता था परंतु जिस का सामीप्य उसे दाहक था. वह आजन्म प्रकृति के दो परस्पर विरोधी तत्वों —सत और असत, प्रेम और घृणा, क्रूर और कोमल, यथार्थ और स्वप्न, जागृति और सुषुप्ति, अंधकार और प्रकाश, संहार और सृजन, जीवन और मृत्यु—के ऊहापोह में भटकते रहे. वह आस्तिक वाद को पूर्णतः त्याग कर निरीश्वरवादी भी नहीं हो सके. यह उन के नाटकों, खंडकाव्य, महाकाव्य, निबंधों और स्फुट काव्यों से ज्ञात होता है. उन के संपूर्ण स्फुट काव्यों का संचयन मृत्यु से कुछ ही महीने पूर्व प्रकाशित हुआ था.

सच्चे अर्थों में सुख के अनुसंधाता बालकृष्ण प्रेम को जीवन का मूल मंत्र मानते थे. परंतु उन का हृदय दुख और मृत्यु की अवश्यंभाविता से दहल उठता था. वह चेतना और हताशा, अवसाद और अवसान की व्यापकता से खिन्न होते थे. दुख और मृत्यु से निर्भय होने के उन के स्वर 'निर्भयता' कविता में अवश्य ध्वनित हुए हैं. परंतु मृत्यु की आशंका उन की अनेक स्फुट कविताओं का आदिस्वर है. बिंबों और उपबिंबों की लड़ियों से पिरोयी गयी उन की नाटकीय एकालापी शैली उन की प्रमुख शैली थी. कहने के लिए उन्होंने 'कविता' को संबोधित करते हुए कहा कि :

तुम अपने सारे वस्त्रों को उतार दो
सारे अलंकारों को हटा दो
कुटिल कुंतल को उठा दो
तुम्हारा नंगा स्वरूप
एक बार देखने की मेरी इच्छा है.
(चिसो चुल्हो सर्ग 'रात')

परंतु उन की शैली अलंकार बाहुल्य और उक्ति वैचित्र्य से अत्यधिक बोझिल हुआ करती थी. वह वैज्ञानिक पद्धति के तर्कशास्त्री थे. वह थोड़े में ज्यादा कह तो पाते थे पर इस प्रकार बुद्धिसारयुक्त संक्षिप्ति उन्हें रास नहीं आती थी. वह विशद तार्किक विश्लेषण युक्त शैली में फतवा देते हुए लंबी लंबी कविताएं लिखना ही अधिक पसंद करते थे. फलतः उन की कविता में चमत्कार कौशल और बौद्धिकता की आढ्यता अधिक है जिस के चलते उन की शैली प्रायशः पंडिताऊ और कृत्रिम लगती है. जो कुछ भी हो, वह रस सिद्ध थे और मनसा तथा वाचा कवि. ऐसे स्वयंभू समाज में मुश्किल से अवतरित होते हैं, वह अपनी कमजोरियों के बावजूद वरेण्य और श्रद्धेय हैं.

आज की कविता

स्वर्गीय बालकृष्ण सम की दार्जिलिंग की भारती नामक मासिक पत्रिका में 1947 में प्रकाशित एक कविता यहाँ दी जा रही है.

पुस्तकालय

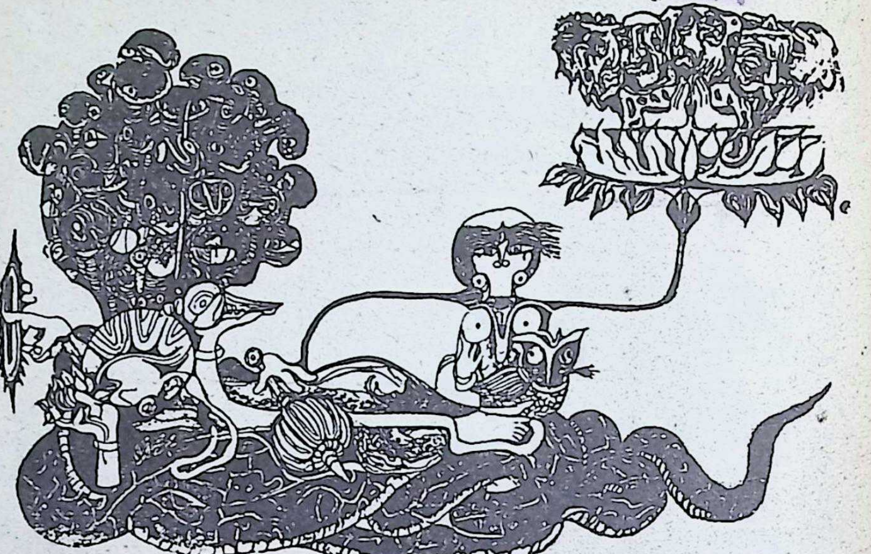

रेखांकन : शशि शाह

इच्छा

मेरी इच्छा यही है, महेश
कि जब अंतिम मृत्यु शैया
तप कर मेरा रक्त सुखा देने लगे
और मैं छटपटाहट के मारे बेहोश हो कर मरने लगूँ
उस समय मेरे मुँह में पड़ें
केवल नेपाल की बूटियाँ
जिन में पड़े हों हिम शैल के मधुर शीतल स्वच्छ चुंबन
कि 'यह नेपाल स्वतंत्र हो कर फलता फूलता रहे
राजा और प्रजा में सदैव शांति ऐश्वर्य की बेल
घनीभूत हो कर फैलती ही रहे.'
इस संदेश को मैं ब्रह्मनाल से तकिया बना कर
वहाँ भेज पाऊँ
जहाँ साक्षी शंकर रहते हैं और श्मसान के
वाद की आशाएँ
कि जब मंदिर में घंटे की ध्वनि तथास्तु उत्तर दे
उस समय मैं शांति और मुस्कुराता
नेपाल देख कर ही मरूँ
मेरी लाश में पवित्र चंदन की रगड़ हो
मेरे लिए नेपाली सुकुमार हाथों से बने
मोटिया कपड़ा कफन बने
नेपाली वन की पवित्र तुलसी श्री खण्ड के साथ प्रिय सुंदर
आर्यघाट तट की ताजा चिता में
मैं जलूँ
कि मृत्यु के बाद अंत में
उसी स्वर्णिम स्थल में मुझे रहने को ठौर मिले
जहाँ मृत्योपरांत के संतरण पश्चात
नेपाली बस गये हैं.

अनुवाद : ईश्वर बराल

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

डी.पी.पी. द्वारा माल मंगाइये

भारत भर से प्रकाशित सभी विषयों की

हिन्दी पुस्तकें

राजधानी के सबसे बड़े शोरूम में उपलब्ध हैं।

अपने पुस्तकालय या निजी लायब्रेरी के लिए अपनी पसन्द की पुस्तकों का चुनाव करने के लिए पधारें

हिन्दी बुकसेन्टर आसफ अली रोड (निकट डिलाईट सिनेमा) नई दिल्ली-110002

फोन : 274874, 273335

सूची पत्र निःशुल्क मंगायें

प्रतिष्ठित कथाकार कृष्ण बलदेव बैद के चार अत्यंत महत्वपूर्ण, विवादास्पद एवं उत्तेजक उपन्यास

विमल उर्फ जाएं तो जाएं कहां	: २५.००
नसरीन	: १०.००
दूसरा ना कोई	: १२.००
दर्द ला दवा	: १४.००

४० प्र.श. कमीशन की सुविधा के साथ प्राप्त करें.

संभावना प्रकाशन
रेवती कुंज,
हापुड़–२४५१०१

एक बार अवश्य पढ़िए. क्या?

सत्यदास की लौहलेखनी का चमत्कार:–

हमारी भ्रांतियां (मूल्य 8 रु.)

सरिता (नयी दिल्ली): "परिश्रमी लेखक ने विषय को प्रत्येक दृष्टिकोण से देखा है और उसके एक-एक अंग की अलग-अलग चर्चा करके विरोध में उपस्थित की जा सकने वाली हर संभव तर्कपूर्ण आपत्ति का समुचित संतोषजनक उत्तर दिया है." संपर्क सूत्र:- **अनन्तानन्द प्रकाशन** ए-6, दुर्गापुरा कालोनी, बिरला ग्राम (नागदा जं.) 456331 (म.प्र.). वितरणार्थ 100 प्रतियां एक साथ मंगवाने पर 40% और 500 प्रतियों पर 50% कमीशन दिया जायेगा. एक प्रति वी.पी. से मंगवाने को तीन रु. डाक खर्च भेजिए.

पराग
बच्चों की सम्पूर्ण मासिक पत्रिका

विज्ञापन दरें :

पूरा पृष्ठ 1-5 बार	रु. 2000.00
6 बार एवं अधिक	रु. 1510.00
आधा पृष्ठ 1-5 बार	रु. 1050.00
6 बार एवं अधिक	रु. 760.00
पैनल 1-5 बार	रु. 150.00 प्रति पैनल
6 पैनल एवं अधिक	रु. 118.00 प्रति पैनल

(5.50 सें.मी. × 5.50 सें.मी.)

विज्ञापन व्यवस्थापक

पराग

7, बहादुरशाह जफर मार्ग

नई दिल्ली-110002 फोन: 270161

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu

CC-0. In Public Domain. Digitization by eGangotri.Funding: MIDF

पंजीयत सं. D-(C)-183
पूर्व शुल्क के बिना डाक में डालने की अनुमति–लाइसेंस सं. U-13

MADRAS
Regn. No. G6/TN/MS(C)/503

डाक घर सावधि जमा में

ब्याज की अब अधिक दरें

यह लोकप्रिय बचत योजना आपको अब अधिक आकर्षित करेंगी

डाक घर सावधि जमा (डा० घ० सा० ज० के नाम से ज्ञात) में अब पहले से अधिक रिटर्न।

2 मार्च, 1981 से लागू संशोधित दरों पर नजर डालें और देखें कि क्या वे अतुलनीय नहीं?

1 वर्षीय – 8.5%	ब्याज छमाही आधार पर
2 वर्षीय – 9.5%	जोड़कर वार्षिक रूप से
3 वर्षीय – 10.5%	देय।

सर्वोत्तम योजना में अपना धन लगाएं।

अधिक जानकारी के लिए कृपया सम्पर्क करें :

- कोई भी डाकघर
- अधिकृत एजेंट
- जिला बचत अधिकारी द्वारा कलैक्टोरेट
- लघु बचत निदेशालय (राज्य सरकार)
- रा० ब० सं० का क्षेत्रीय कार्यालय (भारत सरकार)

या लिखें :–

राष्ट्रीय बचत संगठन

12, सेमिनेरी हिल्स, नागपुर-440006

डीएवीपी 81/4

Nepal Sanskrit University, Balmeeki Campus, Kathmandu